ISSN 2394-0654

शोध खनिज

Shodh Khanij

जनवरी-मार्च 2024 वर्ष 10 अंक 37

बहुविषयक पीअर रिव्यूड जर्नल

Multidisciplinary Peer Reviewed Journal

Multidisciplinary Peer Reviewed Journal ISSN: 2394-0654

बहुविषयक पीअर रिव्यूड जर्नल

शोध खनिज Shodh Khanij

जनवरी-मार्च 2024 वर्ष - 10 अंक - 37

संपादक

डॉ. अमृत कुमार

जनसंचार विभाग, झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय

चेरी-मनातू, कामरे, रांची (झारखंड) पिन – 835 222

shodhkhanij@gmail.com

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

मुदित बाल विद्यालय, त्रिमूर्ति नगर, उमरी

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन कोड – 442 001

Mob. 9823696685 **gandhikhadi@gmail.com**

संपादकीय संपर्क

बी. 6, बालाजी अपार्टमेंट, फ़ूटा रोड 41

मंदिर वाली गली, संत नगर, बुरारी, दिल्ली पिन – 110 084

www.muditeducation.com/shodhkhanij

© शोध खनिज में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

संपादक मंडल

सलाहकार समिति

प्रो. (डॉ.) अनिल कुमार राय
कुलपति
पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय
सीकर (राजस्थान) पिन 332024

प्रो. (डॉ.) मोहम्मद फरियाद
प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी
गच्चीबौली – हैदराबाद. पिन-500032

प्रो. (डॉ.) संजय सिंह बघेल
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन - 110021

श्री अजीत कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन - 110021

डॉ. बच्चा बाबू
सहायक प्रोफेसर, जनसंचार और नवीन मीडिया विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, सांबा, जम्मू पिन 181143

पुनरीक्षण समिति

डॉ. गोविन्द प्रसाद वर्मा
सहायक प्रोफेसर, मानविकी और भाषा संकाय
महात्मा गाँधी केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी (बिहार) पिन – 845401

डॉ. गजेंद्र प्रताप सिंह
वरिष्ठ पत्रकार
ललितपुर (उत्तर प्रदेश) पिन – 284403

पुनरीक्षण समिति

डॉ. अमिता
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर
(छतिसगढ़) पिन 495009

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन -812007

डॉ. भारती देवी
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
मोतीलाल नेहरू कॉलेज (इवनिंग)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन -110021

डॉ. विवेक विश्वास
सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग
महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन 110096

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. रुद्रेश नारायण मिश्र
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता संकाय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन 110007

डॉ. उमेश कुमार सिंह
वर्धा समाज कार्य संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

स्वामित्व, प्रकाशक और मुद्रक: अमृत कुमार, एल 1, ए 19, मोहन गार्डन, उत्तम नगर दिल्ली – 110059. संपादक : अमृत कुमार

शोध खनिज Shodh Khanij

जनवरी-मार्च 2024 वर्ष - 10 अंक - 37

अनुक्रम

संपादकीय पृष्ठ संख्या

- पेड़ न्यूज की अवधारणा **_घनश्याम लाल _डॉ. अजय कुमार सिंह** 05-10
- Digital cartographic method of visualization of distortions due to changes in map projections and thematic map generation **_Ujjwal Kumar** 11-22
- Social Justice of Mahatma Gandhi **_Dr. Sanjay Kumar Pandey _Mr. Mahendra Kumar** 23-29
- डुग्गर प्रदेश दी बुनाई सरबंधी लोककला **_डॉ. शशि भारती** 30-34
- विशेष आवश्यकता वाले (सीडब्ल्यूएसएन) छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन **_रोशन लाल पटेल _राजीव कुमार तिवारी _डॉ. पी. एन. मिश्र** 35-40
- सामाजिक बहिष्करण की अवधारणा : एक सारगर्भित अध्ययन **_चंद्रमणि राय** 41-53
- सामाजिक समरसता हेतु व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक प्रयास **_कौशल किशोर** 54-59
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका **_डॉ. जगदीश चन्द्र खटीक** 60-69
- The Role of Public Broadcasting in India **_Kshitiz Dwivedi** 70-86
- भारतीय भाषाओं में रामकथा की विविधता **_कुमार विश्वमंगल _प्रो. बीर पाल सिंह यादव** 87-98
- संताल हुल कारण और परिणाम **_डॉ. अजय सिन्हा _डॉ. दीपक कुमार कोठरीवाल** 99-107
- मूल्यांकन की बदलती संस्कृति का आकलन : एन. ई. पी. 2020 के संदर्भ में **_बाल मुकुन्द पाल _प्रो. (डॉ.) शिरीष पाल सिंह** 108-116

NOTES FOR AUTHORS

संपादकीय

'शोध खनिज' का यह अंक आपको विविध विषयों की शोध-यात्रा पर आमंत्रित करता है, जहाँ अकादमिक गंभीरता के साथ समसामयिकता का भी समावेश है। इस अंक में प्रकाशित लेख न केवल विचार की व्यापकता को दर्शाते हैं, बल्कि भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और तकनीकी परंपराओं का भी सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं।

संचार माध्यमों की वर्तमान विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता शोध पत्र "पेड़ न्यूज की अवधारणा" पाठकों को मीडिया की निष्पक्षता पर पुनर्विचार का अवसर देता है। वहीं "Digital Cartographic Method of Visualization..." तकनीकी क्षेत्र में नये प्रयोगों को उद्घाटित करता है, जिसमें मानचित्रीय विकृतियों के डिजिटल विश्लेषण का प्रभावी प्रस्तुतीकरण है।

गांधी विचारधारा पर आधारित "Social Justice of Mahatma Gandhi" आज के समय में सामाजिक समानता के मूल्यों को पुनर्स्मरण कराता है। इसी क्रम में "सामाजिक बहिष्करण की अवधारणा" और "सामाजिक समरसता हेतु व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक प्रयास" समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों की स्थिति को समझने और सुधारने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

"डुग्गर प्रदेश दी बुनाई सरबंधी लोककला" पारंपरिक हस्तशिल्प की संवेदनशीलता और सांस्कृतिक महत्त्व को रेखांकित करता है। भाषाई विविधता पर आधारित "भारतीय भाषाओं में रामकथा की विविधता" भारतीय साहित्य की बहुरंगी परंपरा का भावपूर्ण चित्रण है।

शिक्षा क्षेत्र से जुड़ी दो शोध प्रस्तुतियाँ – विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों के शैक्षिक विश्लेषण और "मूल्यांकन की बदलती संस्कृति का आकलन – एन.ई.पी. 2020 के संदर्भ में"– वर्तमान शैक्षिक परिवर्तनों और नीतिगत सुधारों को केंद्र में रखती हैं।

इतिहास के पन्नों से उभरती "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका" और "संताल हुल: कारण और परिणाम" जैसे शोध पत्र हमें हमारे अतीत से जुड़ने और उससे प्रेरणा लेने के लिए प्रेरित करते हैं।

अंततः "The Role of Public Broadcasting in India" जनसंचार की भूमिका का व्यापक अवलोकन प्रस्तुत करता है, जो वर्तमान मीडिया परिदृश्य में अत्यंत प्रासंगिक है।

यह अंक शोध की बहुआयामी प्रकृति को न केवल सामने लाता है, बल्कि यह भी सिद्ध करता है कि भारतीय बौद्धिकता अपनी जड़ों से जुड़ी रहकर समय के साथ संवाद करना जानती है। हमें विश्वास है कि यह संग्रह आपके विचारों को समृद्ध करेगा और नए विमर्शों की ओर प्रेरित करेगा।

पेड न्यूज की अवधारणा

घनश्याम लाल*
lakshkarlib1972@gmail.com

डॉ. अजय कुमार सिंह†
jmc.ajaysingh@gmail.com

सारांश

प्रकाशित/टेलिविजन चैनलों पर समूह या संस्थान के लिए अनुकूल पत्रकारों तथा मीडिया संगठनों को ताकि उनके समाचार लेखों में वह कोई भी संचार/प्रसार माध्यम यानि मीडिया चाहे तो वह मुद्रित हो या फिर इलेक्ट्रॉनिक उसमें प्रकाशित प्रसारित किसी भी समाचार, आलेख अथवा विश्लेषण को जिसका मूल्य प्रतिफल के रूप में नकद राशि अथवा वस्तु में हो, उसे 'पेड न्यूज' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसी के साथ अन्य शब्द 'पेड कंटेन' भी इस संदर्भ में प्रयुक्त होने लगा है जिसका सीध - सा अर्थ यह है कि समाचार पत्रों-पत्रिकाओं प्रसारित विषय–वस्तु से संबंधित आलेख जो उस प्रसार अथवा प्रसारण कर्ता संगठन, संकेत देते हैं और जिसके लिए भुगतान किया गया है। भारत में 'पेड न्यूज' वैयक्तिकों और संगठनों की ओर से नकद भुगतान अथवा समकक्ष का अभ्यास है दिखाई दे और निरंतर सकारात्मक कवरेज सुनिश्चित हो। भारतीय प्रेस परिषद ने 'पेड न्यूज' को इस तरह परिभाषित किया है— "किसी भी मीडिया (प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक) में नकद या वस्तु के रूप में कीमत लेकर प्रकाशित होने वाला कोई भी समाचार या विश्लेषण' इस परिभाषा को हालांकि निर्वाचन आयोग सहित संबंधित अन्य संगठनों की ओर से भी आम तौर पर स्वीकार कर लिया गया है। यह मुद्रित मीडिया तक ही सीमित है जबकि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया 'पेड न्यूज' की प्रवृत्ति को बहुत आगे तक अपना चुका है अतएव उसे भी इसकी परिधि में लेना आवश्यक है।

मुख्य शब्द :

पेड न्यूज, मीडिया, पत्रकारिता, चुनाव आयोग, भारतीय प्रेस परिषद, राजनीति, प्रचार, निष्पक्षता, लोकतंत्र,व्यवसायीकरण, विज्ञापन, जनता, सामाजिक उत्तरदायित्व, नियंत्रण नीति।

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, हरिदेव जोशी पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर**

† **शोध पर्यवेक्षक और सहायक प्रोफेसर, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विभाग**
हरिदेव जोशी पत्रकारिता और जनसंचार विश्वविद्यालय, जयपुर

पेड न्यूज अर्थात् वे समाचार जिन्हें दिखाने के लिए जानबूझकर राशि दी जाती है। ऐसा समाचार पत्रों और समाचार टेलीविज़न चैनलों के जरिए होता है। ऐसे समाचारों में असंख्य राजनीति संबंधी होते हैं। ऐसे गलत अथवा बदले हुए समाचार राजनीतिक लाभ उठाने के लिए प्रकाशित किए जाते हैं। पेड न्यूज की कोई सत्य विधि मान्य परिभाषा वैसे तो नहीं है, ऐसे में भारत के चुनाव आयोग ने भारतीय प्रेस परिषद से पेड न्यूज को परिभाषित करने का आग्रह किया था, जिस पर प्रेस परिषद ने इसी परिभाषा को निर्धारित किया साथ ही माना कि कोई समाचार या विश्लेषण अगर पैसे या किसी और तरफदारी के बदले किसी भी मीडिया / इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट में जगह मिलती है तो उसे पेड न्यूज की श्रेणी में रखा जाएगा।'' इसी के दृष्टिगत ही पेड न्यूज को प्रबुद्ध एवं वरिष्ठ पत्रकारों तथा पत्रकार संगठनों ने भी परिभाषित किया, उन सभी के आधार पर कहा जा सकता है कि - ''संपादकीय सामग्री के स्थान पर छपी या दिखाई गई सामग्री से पेड न्यूज का तात्पर्य है, जो देखने में तो समाचार लगे पर उसके लिए भुगतान हुआ हो। भारतीय प्रेस परिषद ने भी पेड़ न्यूज को परिभाषित करते हुए अपने प्रतिवेदन में यह उल्लेख भी किया कि पेड न्यूज व्यक्तिगत पत्रकारों, और विशिष्ट मीडिया संगठनों, जैसे समाचार पत्रों - पत्रिकाओं और टेलीविज़न चैनलों का आर्थिक रूप से लाभान्वित करता है। वस्तुतः भारत में इस तरह की प्रवृत्ति सरकार के साथ ही प्रबुद्ध लोगों और निष्ठावान पत्रकारों के लिए चिन्ता का विषय बन चुकी है। मीडिया में इस प्रवृत्ति के संगठित रूप से व्यापक होने जाने का सबसे बड़ा कारण उसका व्यवसायीकरण होने के साथ ही कई विसंगतियों का अधिभावी होने जाना है

भारतीय पत्रकारिता के समग्र स्वरूप पर पेड न्यूज का जो धब्बा बार-बार लगता जा रहा है, वह मीडिया/पत्रकारिता के व्यवसायीकरण का ही भाग। इसे लेकर जो सब ओर चिन्ता व्याप्त है वह इसलिए कि पत्रकारिता का परंपरागत अर्थात् बुनियादी / मूल स्वरूप जो सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने, निरपेक्ष व्यवहार करने और सत्य का साथ देने का है, वह विकृत न हो जाए, उसकी शक्ति समाप्त न हो जाए। यह भारतीय पत्रकारिता/संचार माध्यम में ऐसी घटना अथवा प्रभावी होती प्रवृत्ति है जिसमें भुगतान के प्रतिफल में अनुकूल लेख/समाचार राजनीतिज्ञों व्यवसायियों, उद्यमियों, विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिष्ठा प्राप्त विशिष्ट जनों अथवा माध्यमों ओर से प्रकाशित–प्रसारित कराए जाते हैं और इसे स्तरीय शब्दावली में 'प्रायोजित' कह दिया जाता रहा है। ऐसे कदाचार के व्यापक होने के लिए मीडिया जितना जिम्मेवार है उतना ही जिम्मेवार वे व्यक्ति, समूह, संगठन आदि भी है जो येन-केन-प्रकारेण अपने-अपने क्षेत्र में सफल होना चाहते हैं।

पेड न्यूज विज्ञापन का आज के दौर का परिवर्तित ऐसा स्वरूप है जिसमें समाचार पत्रों-पत्रिकाओं और टेलीविज़न समाचार चैनलों के प्रस्तुतकर्ता, संपादक और विषय विशेषज्ञ जो वस्तुतः वहां के वेतन भोगी कार्मिक ही होते हैं, अपने मालिक के उस निर्देश पर किसी राजनीतिक दल, समूह अथवा संगठन विशेष के विक्रय कार्मिक की तरह काम करते हैं, जिसे व्यावसायिक हितों को साधने की दृष्टि से जारी किया जाता है। वैसे भी मौजूदा दौर में 'पेड न्यूज' शब्द जिस संदर्भ में प्रयुक्त हो रहा है, वह शाब्दिक अर्थ में तो अनुपयुक्त है परन्तु व्यवहारतः उपयुक्त है, क्योंकि इसका शाब्दिक अर्थ 'विज्ञापन के माध्यम से प्रचार' के रूप में व्यक्त होता है, परन्तु व्यवहारतः इसे जिस अर्थ और संदर्भ में लिया जा रहा है, वह पत्रकारिता में भ्रष्टाचार के आरोप जैसा

है। इसे सैद्धांतिक रूप से कदाचार मानते हुए दंडनीय अपराध बनाने के स्वर तो उभरे है पर व्यावहारिक रूप से इसे इसी श्रेणी में कब रखा जाएगा, यह यक्ष प्रश्न अब भी है।

भारत में ‘पेड न्यूज’ शब्द पढ़ने-सुनने का अवसर सामान्य जनता को चुनाव प्रक्रिया शुरू होने के समय ही मिलता है, अन्यथा वह उसका इससे कोई सरोकार नहीं होता। भारतीय निर्वाचन आयोग तथा भारतीय प्रेस परिषद को ओर से निर्देश जारी होते हैं कि मीडिया में पेड न्यूज नहीं चलाई जाए, अन्यथा समुचित कार्रवाई होगी। ऐसे निर्देश चुनाव के दौरान ही जारी होते हैं, इसी में आम लोगों को मीडिया की इस प्रवृत्ति’ से परिचय होता है। चुनावों के दौरान किसी दल विशेष अथवा चुनाव लड़ रहे प्रत्याशी विशेष का महिमा मंडन करने जैसे समाचार दिखाने। प्रकाशित करने को ही सामान्यतया पेड न्यूज समझा जाता है जबकि इस प्रवृति का यह परंपरागत रूप से बदल चुका है और इस बदले रूप की समय सीमा चुनाव तक की नहीं वरन उससे पहले और बाद की, अर्थात् पूरे वर्ष भी हो गई है। टेलीविज़न समाचार चैनल हो अथवा समाचार पत्र-पत्रिकाएं, यदि उनमें प्रसारित / प्रकाशित सामग्री तथ्य - विचारहीन और जबरन थोपी हुई प्रतीत हो तो शायद वही पेड न्यूज है। वस्तुतः चुनावों के समय ‘पैकेज’ के नाम पर मीडिया समूह घराने तो निजी स्तर पर पत्रकार स्वयं इस प्रवृत्ति में पुरी तरह संलिप्त हो जाते हैं क्योंकि प्रत्याशी या राजनीतिक दल का भी तौर तरीका उसे बढ़ावा देने वाला ही होता है और उस तरह की वृत्ति पर अंकुश कैसे किया जाए इसकी राह प्रशस्त नहीं हो पाई है।

‘पेड न्यूज’ यानी दत शुल्क सामग्री जो चाहे वह समाचार चित्र संपादकीय टिप्पणी, लेख आदि किसी भी रूप में हो और वह मुद्रित माध्यमों में प्रकाशित हुई है या फिर इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में प्रसारित हुई हो, किसी व्यक्ति, दल, संगठन, संस्थान, प्रतिष्ठान, न्यास आदि की ओर से धन लेकर प्रसारित / प्रकाशित करने की बाध्यता वाली हैं। ‘पेड न्यूज’ यानी सशुल्क समाचार उसे प्रसारित / प्रकाशित करने वाले माध्यम के स्वामी के लिए आर्थिक दृष्टि से भले ही लाभप्रद हो, मगर वह लोकतांत्रिक प्रणाली वाले भारत जैसे देश के लिए बहुत नुकसानदायी साबित होती है। वस्तुतः पेड न्यूज अब जिसने लोकतंत्र के चौथे स्तंभ माने जाते रहे पत्रकारिता / मीडिया जगत को औद्योगिक / व्यापारिक, समूहों-घरानों के हित साधन के सशक्त माध्यम के रूप में परिवर्तित कर दिया है। इस तरह से अब संचार माध्यम व्यावसायिक उपक्रम बनते जा रहे हैं जिसका प्रतिकूल प्रभाव आम लोगों पर इस रूप में हुआ कि पहले उनके अभाव अभियोगों—परिवादों को उनकी अपनी आवाज बनकर शासन-प्रशासन तक पहुंचाने वाले ये संस्थान व्यापारिक, वाणिज्यिक–व्यावसायिक समूहों या घरानों की आवाज बनकर रह गए है। वैसे यह निर्विवाद सत्य परक तथ्य है कि दुनिया में कोई व्यवस्था अंतिम नहीं होती है। वे बनती हैं और उनका अंत भी होता है। भारत में भी कई तरह की शासन–प्रशासन व्यवस्थाएं बनी समाप्त हुई और अब लोकतांत्रिक व्यवस्था है परन्तु भविष्य में यदि उसका भी समापन होता है तो उसका सबसे बड़ा कारण ‘पेड न्यूज’ की यह प्रवृत्ति और ‘निगमन पत्रकारिता’ होंगे।

ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन (बीबीसी) ने अपने विशेष अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि भारत में विश्व के अन्य देशों के साथ-साथ झूठे समाचार का प्रसार तेजी से बढ़ रहा है। लेकिन समाचार जगत में मिथ्या

समाचार ही अकेली समस्या नहीं है, अन्य गंभीर समस्या 'पेड न्यूज' के रूप में उभरी है जिससे मीडिया / पत्रकारिता जगत ग्रस्ति है। कई बार दोनों का रूप एक भी हो सकता है और कई बार अलग-अलग भी। मिथ्या समाचार की तुलना में 'पेड न्यूज' अधिक गंभीर इसलिए बन गई है क्योंकि इसमें बड़े-बड़े मीडिया संस्थानों से लेकर दूर-दराज के कारवाई मीडिया घराने शामिल हैं। 'पेड न्यूज' का प्रचलन चुनावी दिनों में बहुत बढ़ जाता है, कारण कि राजनीतिक दल और प्रत्याशी संचार माध्यमों को अपने पक्ष में और विरोधी के विपक्ष समाचार, चित्र, लेख आदि प्रकाशित प्रसारित करने के लिए भुगतान करते हैं। बी.बी.सी. के इस निष्कर्ष को भारतीय मीडिया के अंदरूनी मामले में अनावश्यक कह कर अनदेखा किया जाना क्या उचित है ? कदापि नहीं, वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए उसे गंभीरता से लेते हुए इस मसले पर व्यापक विचार-विमर्श करने की जरूरत है और स्वयं मीडिया जगत को ही इस तरह की पहल करनी चाहिए।

पेड न्यूज की शुरुआत स:शुल्क समाचार अर्थात् 'पेड न्यूज' जिससे मुद्रित तथा इलेक्ट्रॉनिक, दोनों ही तरह के संचार माध्यम अछूते नहीं है और ऐसी प्रवृत्ति के विरूद्ध भारतीय परिषद सहित अन्य संपादक - पत्रकार संगठन भी इसलिए है कि यह पत्रकारिता की आचार संहिता के प्रतिकूल है क्योंकि इस प्रवृत्ति के कारण समाचार प्रदाता धन के बल पर वह भी प्रकाशित अथवा प्रसारित करवा सकता है जो उसके हित में तथा पत्रकारिता को आचार संहिता के विरूद्ध हो, इस प्रवृत्ति की शुरुआत भारत में कब से हुई, इसे लेकर अलग-अलग तथ्य सामने आए हैं परन्तु इतना निश्चित है कि भारत में पत्रकारिता के व्यावसायीकरण की प्रक्रिया का सूत्रपात होने के साथ ही यह प्रवृत्ति उभरने लगी थी। जबकि इसकी शुरुआत स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही पत्रकारिता का मिशनरी भाव समाप्त होने और पत्रकारिता का सेवा कार्य के स्थान पर उद्योग मानने के साथ ही हो गई थी।

भारत में 'पेड न्यूज' के बीजा रोपण के संबंध में अधिक मान्य तथ्य यह है कि यह प्रथा बीसवीं सदी के पाँचवें दशक में यानी सन् 1950 के आसपास शुरू हुई और धीरे-धीरे यह औपचारिक अनुबंधों तथा निजी संधियों के माध्यम से भारत में संगठित गतिविधि बन गई है। इस तरह की स्थिति पर गहरी चिंता जताते हुए विश्वभर में मूल्यों वाली पत्रकारिता को बढ़ावा देने वाले 'एथिकल जर्नलिज्म नेटवर्क' नामक संगठन में 'अनटोल्ड स्टेटीज- हाउ करप्शन एंड कॉन्फ्लिक्ट्स ऑफ इंटरेस्ट स्टॉक द न्यूज रूम शीर्षक वाले अपने लेख में उल्लेख किया है कि "अगर भारतीय मीडिया उद्योग के ताकतवर समूहों ने अभी ध्यान नहीं दिया तो भारतीय मीडिया में दिख रहा उभार पत्रकारिता और सच्चाई के लिए बेमानी साबित होगा।" अध्ययन से प्रकट हुआ है कि बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड समूह की ओर से अपने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' प्रकाशन के माध्यम से और साथ ही, अग्रणी 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'आउटलुक' जैसे अन्य समूहों की ओर से व्यापक रूप से इसे अपनाया गया लेकिन 'पेड न्यूज' की इस प्रवृत्ति की ओर ध्यान सर्वप्रथम सन् 2010 में पश्चिमी मीडिया के संदर्भ में केन्द्रीत हुआ। इसके बाद ही सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर इसे पत्रकारिता के लिए गंभीर खतरा मानते हुए इस पर व्यापक विचार-विमर्श का क्रम शुरू हुआ और उसके निष्कर्ष के रूप में इस तरह की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए तरह-तरह के उपाय सुझाए गए।

'पेड न्यूज' की शुरुआत कब से हुई, इस संबंध में एक तथ्य यह भी सामने आया है कि सन् 1997 में छत्तीसगढ़ में हुए विधानसभा चुनाव के साथ इस प्रवृत्ति की शुरुआत हुई जिसका सूत्रपात कांग्रेस के उस समय के प्रमुख नेता और भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी रहे अजीत जोगी ने किया। बाद के वर्षों से हिमाचल प्रदेश, पंजाब, चंडीगढ़, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों में हुए चुनावों के समय यह प्रवृत्ति व्यापक रूप ले चुकी थी जबकि आबादी के साथ ही लोकसभा और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों की दृष्टि से भारत के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में सन् 2007 में हुए विधानसभा चुनावों में 'पेड न्यूज' की प्रवृत्ति प्रभावी हुई और समाचार पत्रों ने 'उगाही की। 8 यह सब तब सामने आया जब भारत निर्वाचन आयोग ने उत्तर प्रदेश के बिसौली विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित प्रत्याशी उमलेश यादव को अयोग्य घोषित कर दिया, साथ ही उन्हें सन् 2007 के विधानसभा चुनावों में 'अमर उजाला' और 'दैनिक जागरण' में भारी-भरकम राशि देकर समाचार प्रकाशित करवाने का दोषी पाया। वस्तुस्थिति यह है कि स्थानीय स्तर से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के मीडिया के मिजाज में 'पेड न्यूज' का अनुकूल हो जाना किस क्षेत्र के लिए खतरा बनता जा रहा है इसको ज्ञात कर तदनुरूप कार्यवाही हर स्तर पर किए जाने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

निष्कर्ष

भारतीय मीडिया के 'पेड न्यूज' की प्रवृत्ति को और प्रवृत्त होते जाने पर व्यक्त होने लगी तरह-तरह की चिन्ताओं-आशंकाओं के मध्य भारतीय प्रेस परिषद ने इसे इस तरह परिभाषित किया किसी भी मीडिया (प्रिंट ओर इलेक्ट्रॉनिक) में नकद या वस्तु के रूप में कीमत लेकर प्रकाशित होने वाला कोई भी समाचार या विश्लेषण इसे संबंधित सभी पक्षों ने स्वीकार तो किया लेकिन उन्हें अब यह लगने लगा है कि जब तक इस तरह की प्रवृत्ति को विधायी रूप से परिभाषित नहीं किया जाता और संबंधित संविधियों में आवश्यक संशोधन नहीं किए जाते तब तक इस पर नियंत्रण नहीं पाया जा सकता। अपने पक्ष में समाचार लेख, विश्लेषण आदि का प्रकाशन-प्रसारण हो अथवा विपक्ष के संबंध में प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाने वाले समाचार, लेख, विश्लेषण आदि का प्रकाशन प्रसारण हो इसके लिए मीडिया समूह को धन प्रदान करना हो वस्तुतः 'पेड न्यूज' है। भारतीय मीडिया में 'पेड न्यूज' के व्यापक रूप से प्रभावी होने का सबसे बड़ा कारण पत्रकारिता के तेजी से व्यवसायीकरण स्वरूप धारण कर लेने को माना गया है। एक तरह से 'पेड न्यूज' की यह प्रवृति भ्रष्टाचार या कदाचार ही है मगर इसके लिए अब तक दंड या कोई प्रावधान नहीं है / वास्तविकता तो यह है कि 'पेड न्यूज' राजनीतिक दलों, औद्योगिक व्यापारिक समूहों-घरानों के हित साधन का प्रभावी माध्यम बन चूका है तथा इसके प्रति चिंता व्यक्त करने वालों में जागरूक मीडिया जो आज भी पत्रकारिता के आदर्शों-मूल्यों-सिद्धान्तों का पालन कर रहा है, सर्वोपरि है। विदेशी भी पीछे नहीं है और वे कहने लगे हैं – यदि भारतीय मीडिया उद्योग के ताकतवर समूहों ने अभी ध्यान नहीं दिया तो भारतीय मीडिया में दिख रहा उभार पत्रकारिता और सच्चाई के लिए बेईमानी होगा।

संदर्भ

1. उषा, एम. (2014). रेड्रिक्स माया रेंनाथन– पेड न्यूज: काकटेल ऑफ मीडिया, बिजनेस एंड पॉलिटिक्स. दिल्ली : सागे प्रकाशन. पृ. 121

2. द हिन्दू. (2023 मार्च 2). न्यूज पेपर. नई दिल्ली.

3. नंदा, वृतिका. (2024). *मीडिया और बाजार*. दिल्ली : सामयिक बुक्स.

4. अस्थाना, प्रकाश. (2020 अक्तूबर 19). पेड न्यूज क्या है ? इयन्ता, दिल्ली

5. बाला, अंकित. (2018). *पेड न्यूज क्या है?* – क्योरा, दिल्ली.

6. ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कार्पोरेशन. (2018 नवंबर 14). अनुसंधान बियोड फेक न्यूज'. मुंबई

7. भारतीय प्रेस परिषद. (2010 जुलाई 30). *प्रतिवेदन*. दिल्ली

8. तिवारी, डॉ. अटल. (2018). *हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास* - 'पेड न्यूज' दिल्ली.

DIGITAL CARTOGRAPHIC METHOD OF VISUALIZATION OF DISTORTIONS DUE TO CHANGES IN MAP PROJECTIONS AND THEMATIC MAP GENERATION

Ujjwal Kumar*

ukc.geo@gmail.com

Abstract:

Digital data represents the geographical location and characteristics of natural or man-made features, phenomena and boundaries of the Earth. Geospatial data represents incorporation of real-world entities, such as roads, buildings, vehicles, lakes, forests and countries. The process of converting data from analog to digital format is called Digitizing.

It is a process of converting the geographic features on an analog map into digital format using a digitizing tablet, or digitizer, which is connected to a computer.

Geospatial features are geotagged with a digitizer puck, a device similar to a mouse, and the x, y coordinates of these features are automatically recorded and stored as spatial data. Digitization process involves, features from the traced map or image are captured as coordinates in either point, line, or polygon format.

Keywords:

Diva-GIS, ArcGIS, Distortions, Projections, Coordinate systems, Thematic Map Generation.

* **Faculty & Department of Remote Sensing, Birla Institute of Technology (A Deemed to Be University U/S Of Ugc Act).**

Objective

- To Understand the importance of Thematic map compositions.
- To create a Thematic map composite.
- To understand Digital cartography and output.

INTRODUCTION:

Map Projection is a way to flatten globe's surface into a plane in order to make a map.

Map projection studies distortions of misrepresentation of shape, area, distance or direction of or between geographic features when compared to their true measurements on the curved surface of the earth. Map Projections are used for navigation while some show better representations of the true relative sizes of the continents.

A thematic map is a type of map that portrays the geospatial problem of geodata in a geographic area. It incorporates not only the use of map symbols to visualize selected properties of geospatial features that are not naturally visible, such as temperature, language, or population. History of thematic maps have been stated, starting from 18th and 19th Centuries, as large amounts of Geostatistical data began to be collected and published, such as national censuses. These types, such as choropleth maps, isoarithmic maps, and chorochromatic maps, use very different ways of representing the location and attributes of geospatial phenomena, such that each is preferable for different forms of phenomena and different forms of Geodata data. A wide variety of phenomena and geospatialdata can thus be visualized using thematic maps, including those from the Geopolitical world (e.g., climate, soils) and the human geography (e.g., demographics, public health).

Review of Literature

The process of converting data from analog to digital format is called Digitizing. It is a process of converting the geographic features on an analog map into digital format using a digitizing tablet, or digitizer, which is connected to a computer. Geospatial

Features on a paper map are tagged with a digitizer puck, a device similar to a mouse, and the x, y coordinates of these features are Geo tagged and stored as spatial points. During the digitizing process, Geodata features from the tagged-on map or reference image are captured as coordinates in either point, line, or polygon format.

Types of Digitization are as follows:

1) Manual Digitizing.
2) Heads-Up Digitizing and Interactive Tracing.
3) Automatic digitizing

Manual digitizing is performed by using a digitizing tablet.

A digitizing tablet is an electronic device consisting of a table upon which the map or drawing is placed. It operates manually by tracing most of the lines from the hardcopy map using a pointer device and creates an geospatial digital map on the computer.

Most of the line is digitized by collecting large number of geospatial points along the line. It traces the geospatial features the coordinates of selected points, vertices, are sent to the computer and stored. Most of the points are recorded and registered against geo positional control points, usually the map corners, which are placed in by the user at the beginning of the geo digitizing session. The geospatial points are stored in pre understand spatial system or map projection.

Advantages:

It has very Low economic cost, like geo manual digitizing tables economic.
It has very high Flexibility and quick adaptability to most of the data types and sources.
It is easily understandable.

Disadvantages:

It requires experienced hand and time taking.

It has very low accuracy in operation. The spatial accuracy level the human hand can resolve is about 40 DPI (dots per inch) in the best case.

Heads-Up Digitizing and Interactive Tracing.

Heads up digitizing works mostly on the monitor using the scanned raster image as backdrop. The lines are geospatially tagged, the accuracy level is very higher than using digitizing tablet because the geo raster images are scanned at high resolution.

The method involves separate line tracing process by tracing one line at a time under the guidance of the operator. This is a significant improvement over manual heads-up digitizing in terms of digitizing accuracy and speed, especially when fully automatic raster to vector conversion can't be applied in cases such as low image quality and complex layers.

Advantages:

The main advantage of using interactive tracing is the flexibility of tracing lines selectively and better operator control.

Low cost of labour.

Generally the quality of data is high.

It has the ability to easily register and update existing data.

Automatic digitizing:

Automatic digitizing or automated raster to vector conversion, traces lines automatically from the scanned raster image using image processing and pattern recognition techniques. The idea behind automated raster to vector conversion algorithm is to let the computer do the actual line tracing and eliminate tedious manual tracing the human operator has to do.

A variety of scanning devices exist for the automatic capture of spatial data. While several different technical approaches exist in scanning technology, all have the advantage of being able to capture spatial features from a map at a rapid rate of speed.

Main Text:

1. DIVA-GIS is a site where we get any shape file of countries around the world.

We downloaded shape file of Finland.

2. Then we went to ArcGIS 10.7.1 software ---- Add Data option ---- FIN_admin1.shp ----- map of Finland was opened.

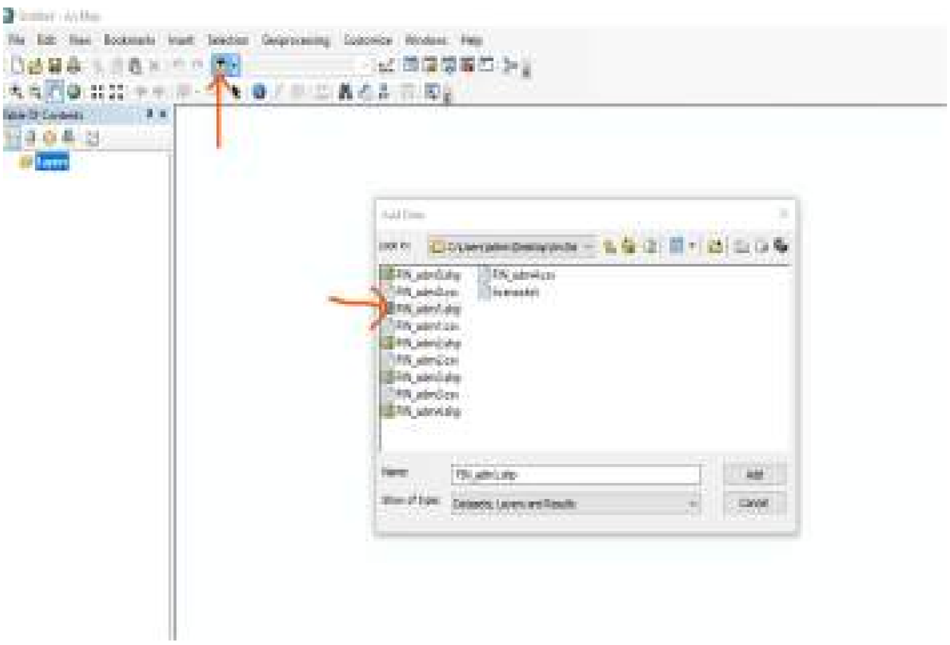

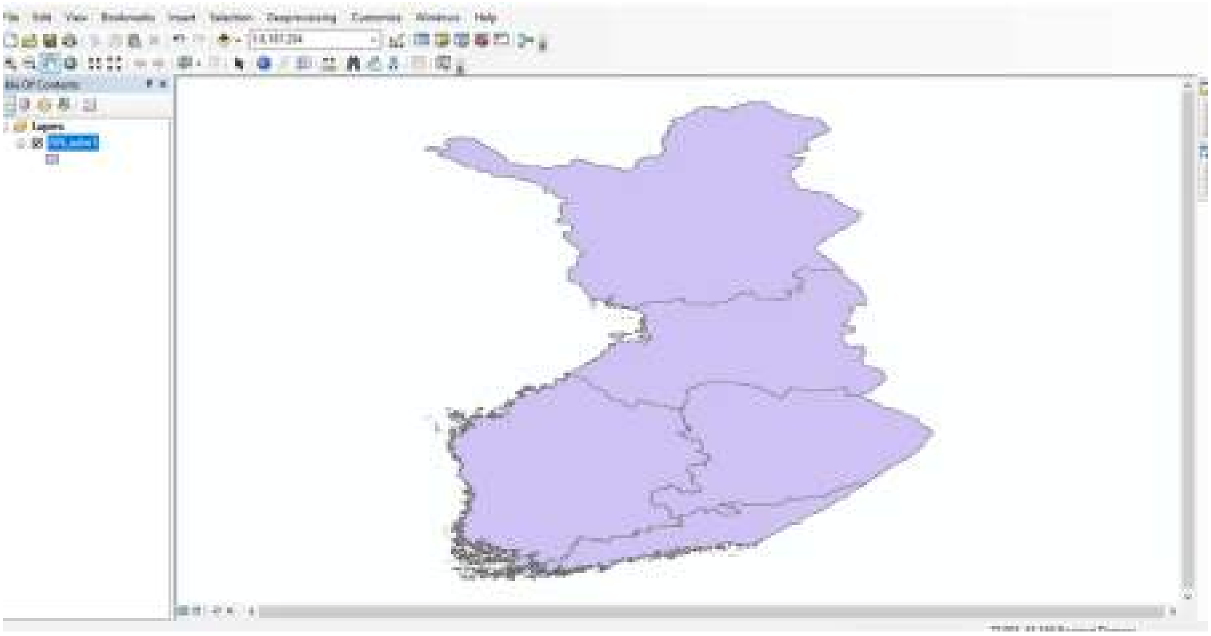

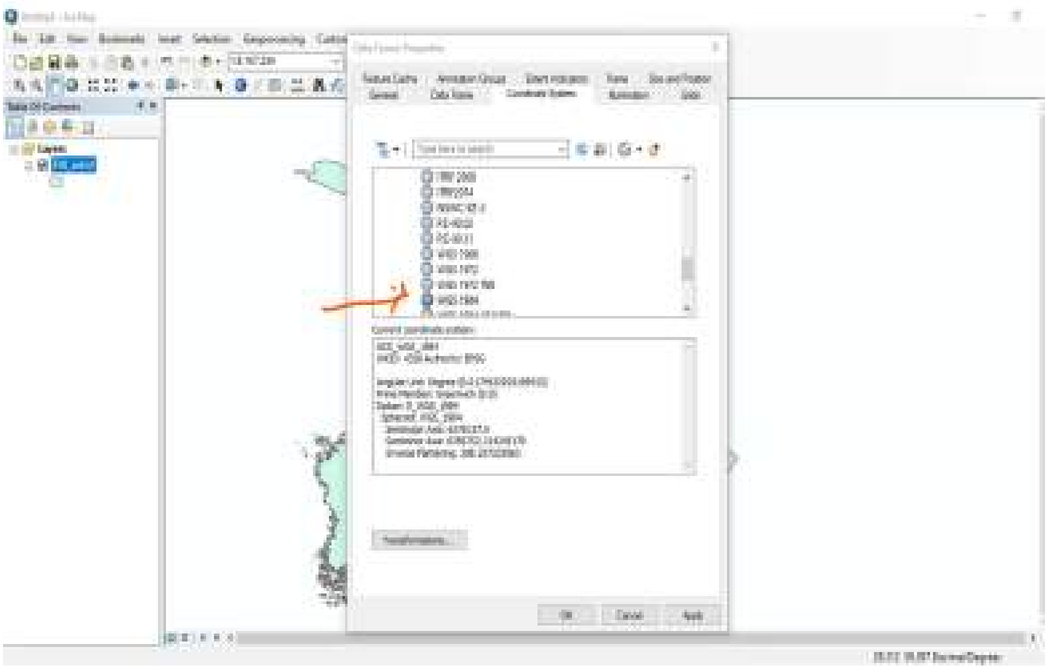

3. Then we went to View ---- Data Frame Properties ------ then we can see various coordinate systems.

4. Then we measure the distance between 2 points and get the following values:

Line measurement (Geodesic)

Segment: 1,002.490405 Meters

Length: 9,960.949509 Meters

Projection: WGS 1984

5. Then we change the projection to JAXA and we measured same distance and achieved following observations:

Line measurement (Planar)

Segment: 7,253.209406 Meters

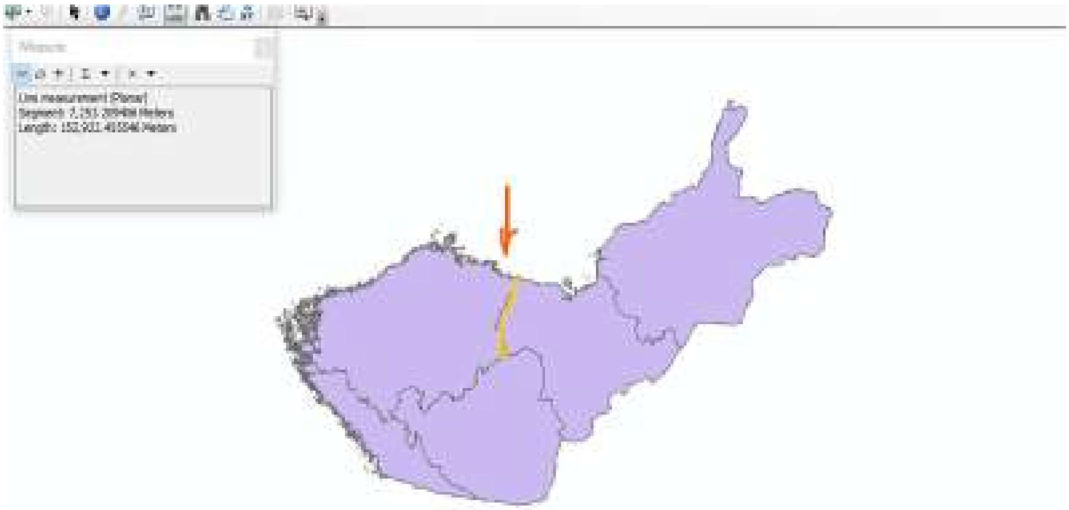

Length: 152,922.455546 Meters

Projection: JAXA

6. Again we change the projection to Azimuthal Equidistant and achieved following results:

Line measurement (Planar)

Segment: 8,474.601433 Meters

Length: 186,856.082818 Meters

Projection: Azimuthal Equidistant (sphere)

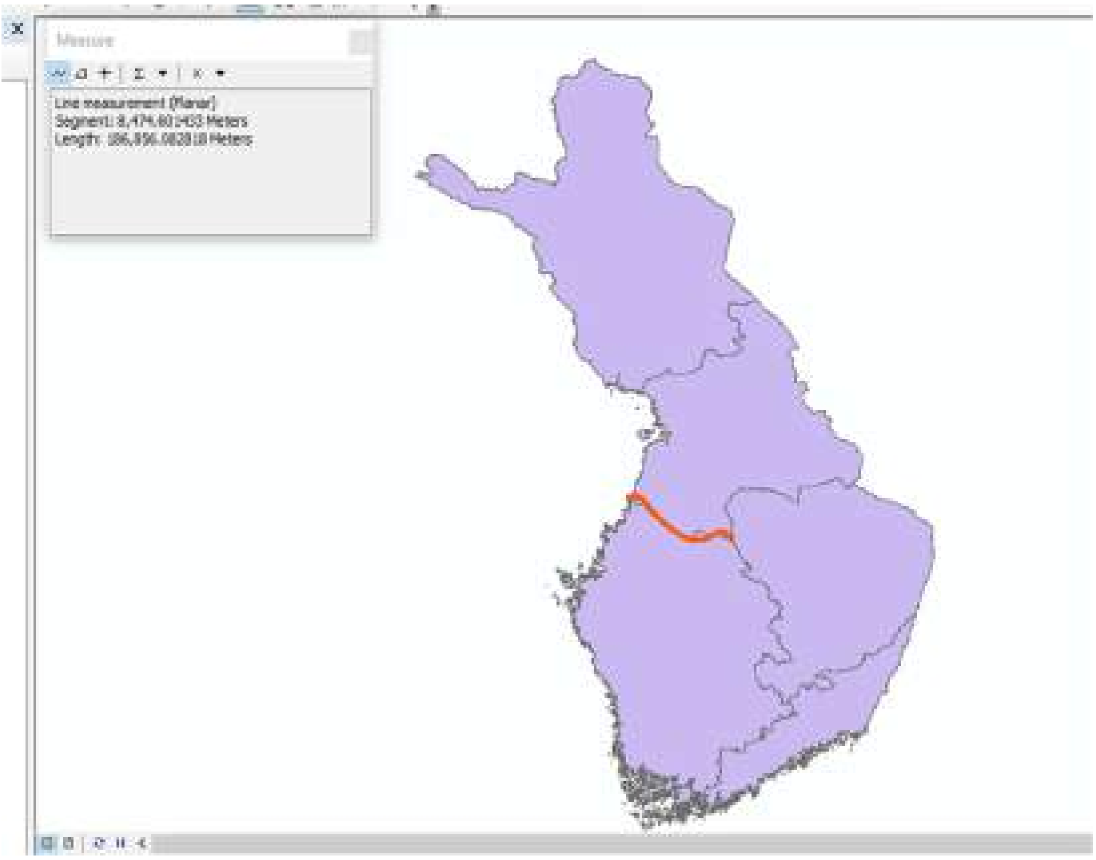

7. Open the ArcMap. Import Layer for layout. Here in this we will bring some Village boundary of Jharkhand.

8. Create a Add Field in attribute table and given a name of the column. Then Right Click the top of the column and click Field Calculator then calculate the literacy rate(%). Formula are given bellow.

9. Which will add map into a rectangular page layout.

10. To insert North arrow, legend and other map elements, go to insert in main menu. For Scale bar we can change the scale unit in Kilometer or any other distance unit.

11. Most important element is grid. to add grid Right click on the layout > Properties > Grids > New Grid > and we can select different kind of grid format and distance between coordinates.

12. To change the left right label Orientation. Go to grid properties > Labels > Label Orientation > Check on left and right> ok For layout orientation For Title, Text, Legend, North Arrow, Scale

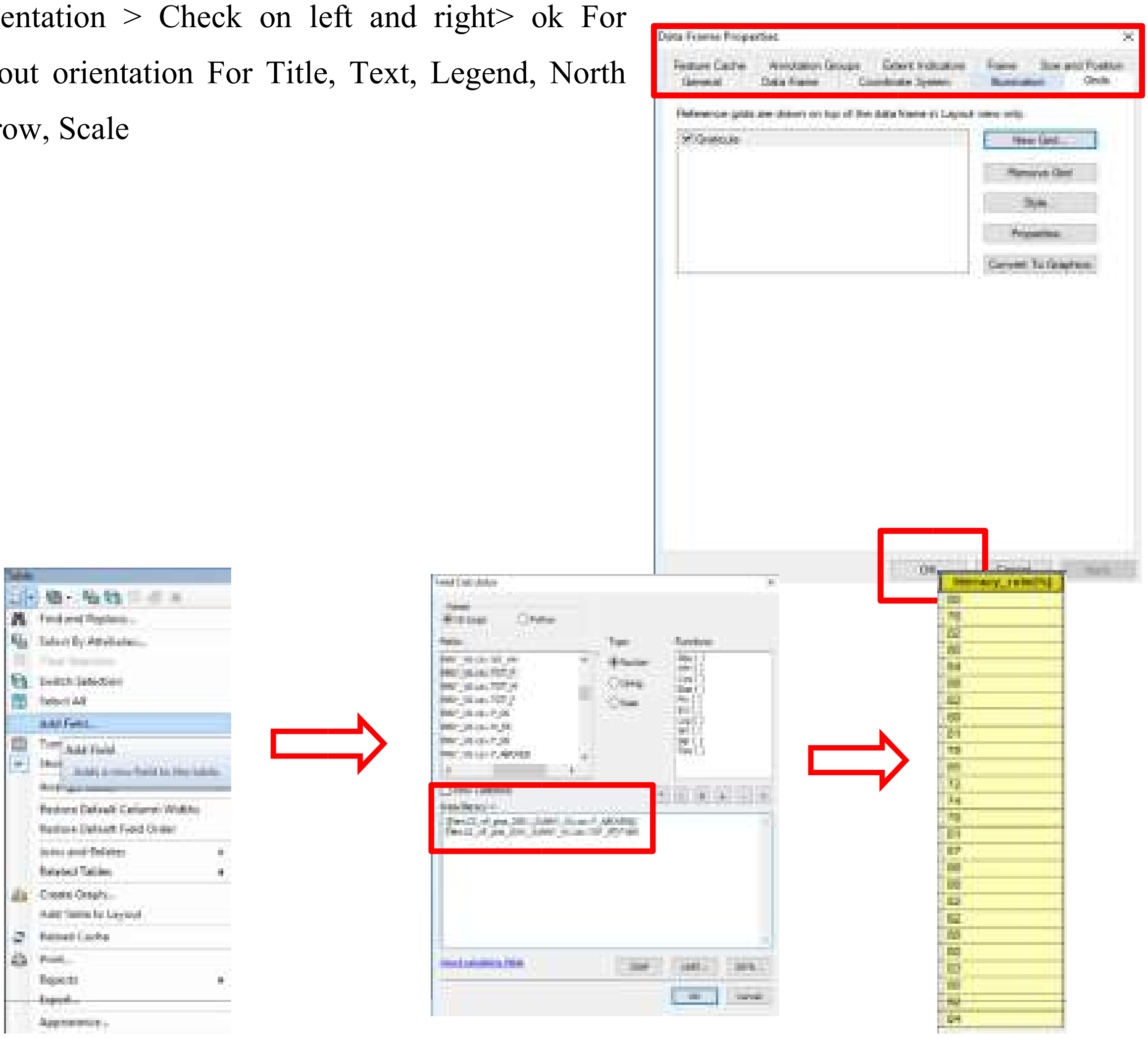

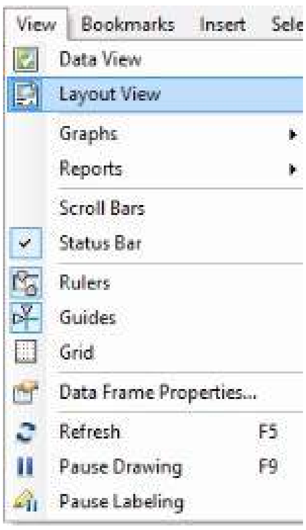

For layout orientation

For Title, Text, Legend, North Arrow, Scale

13. Right click on shapefile in table of content. Then click on properties > symbology > Quantities> Graduated colors> then classify the image and input the color> ok.

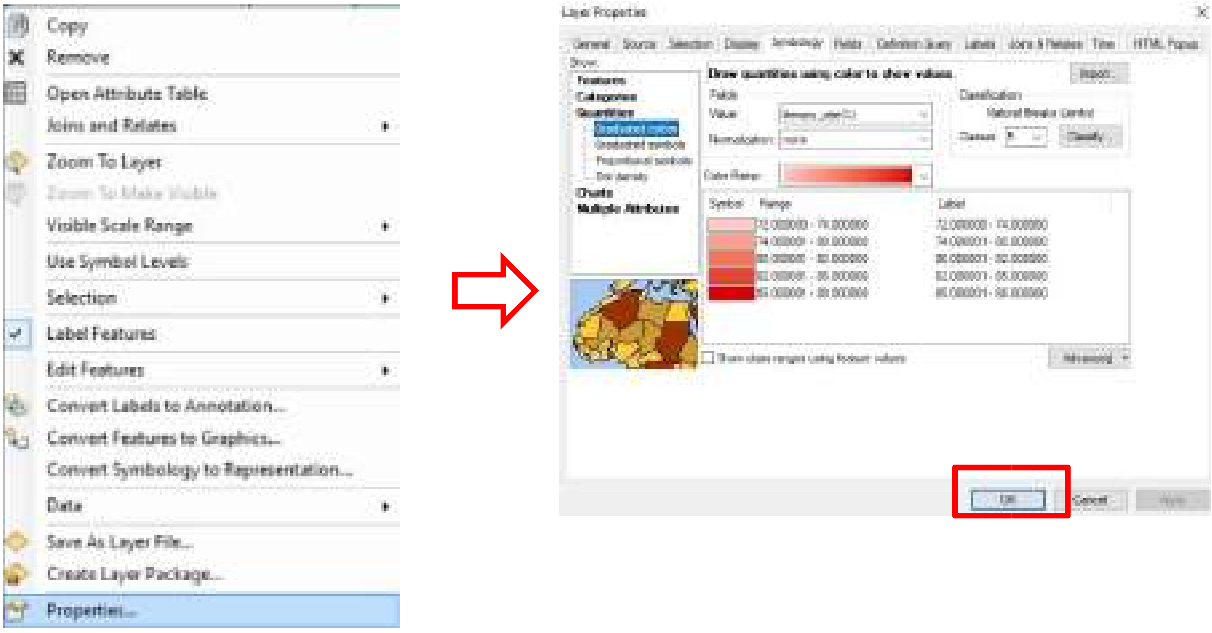

14. Finally go to file then Export Map and save the map with format which we want

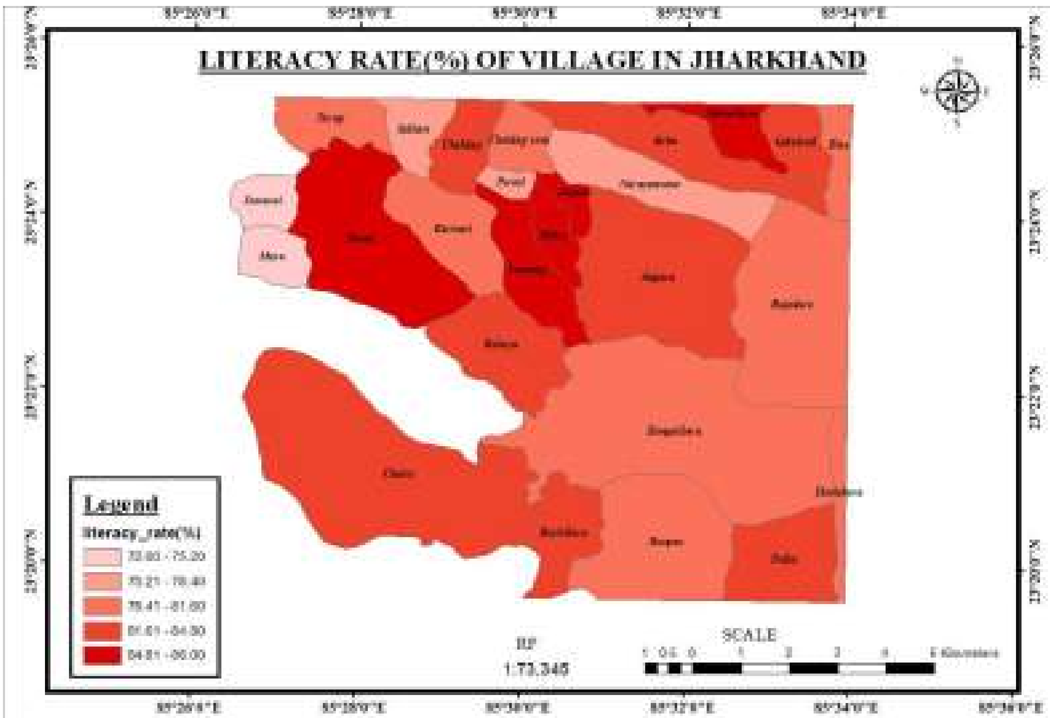

Analysis & Conclusion:

We got to know about different map projections in ArcGIS, how with each projection map distortion changes, changes in same distance with different distortions and why are map projections and distortion used.

Scale is a ratio. This ratio corresponds to the distance on the ground and the distance on the map between the same points. A map without scale has got no meaning. The main types of scale are plain, comparative and diagonal.

The advantages of digital data are a higher degree of accuracy and the possibility of using them as the basis for a broad variety of applications.

That's why we need to convert data from analog format to digital and the most accurate method to do this can be Automatic digitizing.

We have learnt that the topographical maps are large scale maps prepared to show minute details of the ground. i.e; location (longitude and latitude of any location), spot height, bench marks, vegetation, land use, form of settlement, drainage patterns, transport network and communication network.

We read various features like name, number, scale, rivers, reserved forests and contours of the toposheet.

We have also learnt about UTM grids, how to read them and their uses.

References

ALMEIDA, A. F. Samuel Fritz and the Mapping of the Amazon, Imago Mundi, 2003, 55,1: p. 113–119.

CINTRA, J. P. Magni Fluvii Amazoni: o mapa do Conde de Pagan. In: Simpósio Brasileiro de Cartografia Histórica, 1., 11-14 maio 2011, Paraty.

Anais... Paraty: CRCH. p. 1-20.

CORTESÃO, A. Cartografia portuguesa antiga, Comissão Executiva das comemorações do quinto centenário da morte do infante D. Henrique, Lisboa, 1960. 195p.

CORTESÃO, A. History of Portuguese Cartography, Junta de investigações do Ultramar, Lisboa, 1969. 323p.

GASPAR, J. A. Cartas e projeções cartográficas, Lidel Edições Técnicas, 2005. 352p.

HARLEY, J. B. The evaluation of early maps: Towards a methodology, Imago Mundi,1968, 22,1. p. 62–74.

JENNY, B. MapAnalyst – A digital tool for the analysis of the planimetric accuracy of historical maps. e-Perimetron, 2006, v. 1, n. 3, p. 239-245.

JENNY, B. New features in MapAnalyst. e- Perimetron, 2010, v. 5, n.3, p. 176-180.

KEUNING, J. The history of geographical map projections until 1600, Imago Mundi, 1955, 12,1. p. 1–24.

MARGARY, H. A Proposed photographic method of assessing the accuracy of old maps, Imago Mundi, 1977, 29,1. p. 78-79.

NERO, M. A. Estudo comparativo de metodologias de digitalização de mapas e seu

controle de qualidade geométrica. 2000. 233 f. Dissertação de Mestrado, EPUSP, São Paulo,2000.

REIS, A. E. dos. O problema da determinação da longitude no Tratado de Tordesilhas, Maré Liberum, 8, dezembro de 1994, http://cvc.instituto camões.pt/ciencia/e25.html SNYDER, J.P. Flattening the Earth, two

thousands years of map projections, The University of Chicago Press, Chicago, 1997. 384p.

BIBLIOTECA NACIONAL – Projeto Cartografia Histórica dos séculos XVI ao XVIII.

Rio de Janeiro, 2011. http://bndigital.bn.br/cartografia.

SOCIAL JUSTICE OF MAHATMA GANDHI

Dr. Sanjay Kumar Pandey* **Mr. Mahendra Kumar†**

gandhiansanjay@gmail.com **mahendra101@gmail.com**

ABSTRACT: Mahatma Gandhi's concept of social justice was rooted in his principles of truth, nonviolence (ahimsa), and the idea of equitable treatment for all people, irrespective of their caste, religion, or social status. He believed in the inherent dignity of every human being and advocated for the upliftment of the marginalized sections of society, particularly the untouchables, whom he referred to as "Harijans" or children of God. Gandhi envisioned a society where social justice was not merely about political and legal rights but about creating a compassionate and morally just community. His philosophy of social justice went beyond mere equality before the law and focused on the eradication of social evils such as untouchability, child marriage, and the oppression of women. He called for the fair distribution of resources, economic self-reliance, and the protection of the environment. Gandhi also emphasized the importance of non-cooperation with unjust systems, such as the British colonial rule, and encouraged individuals to act according to their conscience. In his view, social justice could be achieved through self-purification, societal reform, and adherence to nonviolent resistance. He firmly believed that true social justice would only be realized when individuals transcended personal greed, egoism, and discrimination, fostering a society based on cooperation, harmony, and respect for all. Through his teachings and actions, Gandhi inspired movements for social justice worldwide, with his advocacy for equality, human dignity, and nonviolent resistance becoming foundational to many later civil rights struggles

Key word: Social, Justice, Mahatma, Gandhi, Nonviolence, Truth

---

* **Assistant Professor, CMP Degree college, University of Allahabad, Prayagraj**

† **Research Scholar, CMP Degree College, University of Allahabad, Prayagraj**

INTRODUCTION-

Mahatma Gandhi's concept of social justice was deeply intertwined with his broader philosophy of truth (satya) and nonviolence (ahimsa) and love[1]. For Gandhi, social justice was not just a matter of legal or political equality, but rather the creation of a society that values the dignity and rights of every individual, especially those who are marginalized or oppressed. His vision sought to address the deep-rooted social inequalities that existed in India, particularly the caste system, untouchability, and the exploitation of the poor. Gandhi believed that true social justice could only be achieved through the transformation of individuals and society, based on ethical principles and compassion. He saw social justice as being closely related to the moral development of society, which required overcoming prejudice, greed, and exploitation. Central to his vision was the idea of Sarvodaya, or the "welfare of all," which called for an equitable distribution of resources, opportunities, and power. One of the most significant aspects of Gandhi's social justice agenda was his relentless fight against untouchability. He sought to uplift the "Harijans" (a term he coined for the untouchables) by advocating for their rights, inclusion, and respect within society. Gandhi's social justice movements also extended to promoting gender equality, fighting child marriage, and encouraging the economic empowerment of rural communities through self-reliance. His idea of social justice was not solely concerned with external reforms, but also with inner transformation. Gandhi believed that individuals must act with integrity, compassion, and nonviolent resistance to injustice. For him, social justice was about ensuring that everyone, regardless of their social status or background, could live with dignity, access opportunities, and contribute to a just and harmonious society. In sum, Mahatma Gandhi's social justice was an all-encompassing philosophy that called for personal and societal reforms grounded in moral and ethical principles, with a focus on inclusion, equality, and the eradication of social oppression. His approach continues to influence movements for social justice around the world, offering a vision of peace, equity, and human dignity.

Description-

Mahatma Gandhi, a renowned leader in the Indian independence movement, is celebrated for his principles of nonviolence (ahimsa), truth (Satya), and self-reliance

(swadeshi). His advocacy for social justice was not limited to political freedom but extended to a profound understanding of moral and societal reform. Gandhi's vision of social justice went beyond legal equality, seeking a society in which every individual—irrespective of their social status, caste, gender, or background—could live with dignity and opportunity. This paper aims to explore Mahatma Gandhi's concept of social justice, its foundational principles, and its practical applications in addressing India's social inequalities.

The Philosophy Behind Gandhi's Social Justice

At the core of Gandhi's approach to social justice was the belief in the moral and spiritual evolution of society. Unlike conventional legal frameworks that focus primarily on rights and laws, Gandhi's view of justice emphasized personal transformation and societal reform. He believed that true justice could only be achieved when individuals overcame their internal prejudices, greed, and hatred and when the collective conscience of society was guided by compassion, fairness, and nonviolent resistance.

Gandhi's philosophy was grounded in the notion that social justice should not only correct inequality but also uplift the soul of society, ensuring that people could coexist in harmony and mutual respect. His call for justice was deeply connected with the idea of *Sarvodaya*—[2]the welfare of all. Gandhi's principle of *Sarvodaya* demanded that the social and economic systems be structured in such a way that every individual, particularly the marginalized, would experience dignity and fairness.

For Gandhi, social justice was not a matter of mere legal rights or redistribution of resources. It was about establishing a moral and ethical society that embodies truth, nonviolence, and love for others. These values became the cornerstone of his advocacy for social justice, leading to his involvement in campaigns aimed at alleviating various forms of social injustice, including untouchability, caste discrimination, gender inequality, and economic exploitation.

Caste System and Untouchability

One of the most significant social issues Gandhi addressed was the deeply entrenched caste system, which divided Indian society into rigid hierarchical groups. Among the most oppressed were the "untouchables,[3]" who faced discrimination, exclusion, and exploitation from the higher castes. Gandhi took up their cause with great zeal and coined the term "Harijan," meaning "children of God," to describe the untouchables, in an attempt to uplift their status and humanize their plight.

He campaigned tirelessly to eradicate untouchability, advocating for the integration of untouchables into mainstream society. Gandhi believed that untouchability was a violation of the principles of truth and nonviolence and argued that no human being could be inherently inferior to another. His efforts to address this issue included organizing marches, fasting, and protests to challenge the societal norms that perpetuated untouchability. The *Temple Entry Movement* in the 1930s, which sought to allow untouchables to enter Hindu temples, and the *Harijan Sevak Sangh*, an organization he founded in 1932 to work for the welfare of untouchables, were key milestones in his mission. securing the untouchables' civil rights but Gandhi's campaign against untouchability was not only about also about transforming the moral conscience of Hindu society. He wanted to show that true spirituality could not be achieved if one practiced discrimination or exclusion. For Gandhi, social justice for the untouchables was integral to India's spiritual and moral awakening, and the fight against untouchability was as important as the struggle for political independence.

Gender Equality and Women's Empowerment

Gandhi was a strong proponent of gender equality and the empowerment of women, even though he operated in a social context where women were often seen as subservient to men. He believed that the upliftment of women was fundamental to the realization of social justice, as women were not only key contributors to society but also the bearers of culture and civilization.

Though Gandhi's views on women were shaped by the socio-cultural norms of his time, he made significant strides in advocating for women's rights. He encouraged women to join the freedom struggle, highlighting their power as agents of change. Women played a critical role in his campaigns for independence, particularly during movements like the *Salt March* and the *Quit India Movement*. Gandhi argued that women could contribute to society equally with men and should be given opportunities to engage in public life, politics, and education.

His concept of social justice also extended to addressing issues like child marriage, dowry, and domestic violence. He promoted the idea of *Swaraj* (self-rule), not only at the national level but also within the household, advocating for women's autonomy and decision-making power in familial matters. Gandhi's emphasis on the importance of chastity, simplicity, and nonviolence extended to his views on women, and he encouraged them to embrace their roles as nurturers of the nation while challenging the subjugation they faced in society.

Economic Justice and Self-Reliance

Economic justice was another pillar of Gandhi's vision for social justice. He was critical of both the British colonial economic policies and the growing industrialization that he believed led to the exploitation of the poor and the destruction of India's indigenous industries. Gandhi's solution was rooted in the idea of *Swadeshi*— the promotion of local industries and the rejection of foreign goods in favor of self-sufficiency. He believed that economic independence was essential for both personal freedom and national sovereignty.

Gandhi's focus on rural development was also central to his economic philosophy. He believed that India's future lay in its villages, where most people lived, and that economic justice could be realized through the decentralization of power and resources. The idea of the *Gram Swaraj* (village self-rule) aimed to empower rural communities to manage their affairs independently, providing them with the means to live in dignity. This focus on self-reliance also extended to agriculture, where he advocated for the preservation of traditional farming methods and the use of locally produced goods.

At the heart of Gandhi's economic justice was the promotion of a fair and sustainable distribution of resources. He rejected the capitalist model, which he saw as exploitative, and called for a system that prioritized the welfare of the poorest over the accumulation of wealth by the few. This vision of economic justice, though not fully realized in his lifetime, remains a cornerstone of his broader social justice framework.

Nonviolence and Non-Cooperation: Tools for Social Justice

For Gandhi, the struggle for social justice was inseparable from his principle of nonviolence (ahimsa). Nonviolence, in Gandhi's philosophy, was not merely the absence of physical violence but an active force for good, a way of life that seeks to overcome injustice with love and compassion. Nonviolence required individuals to resist oppression without resorting to hatred or revenge, a challenge that Gandhi confronted head-on in his political and social struggles[4].

One of the most significant tools Gandhi used in his fight for social justice was *Satyagraha*, or nonviolent resistance. Satyagraha was a form of civil disobedience where individuals refused to cooperate with unjust laws or systems in a peaceful manner. Whether protesting against British colonial rule or fighting against social evils like untouchability, Satyagraha allowed individuals to stand up for their rights without using violence or hatred.

Gandhi's method of non-cooperation with oppressive systems played a vital role in achieving social justice. By refusing to support unjust institutions, such as the British Empire, he was able to mobilize millions in the pursuit of both political and social reform. Non-cooperation, for Gandhi, was a moral response to systemic injustice—a way of not merely overthrowing political rulers but also transforming society from within.

Legacy and Global Impact

Gandhi's ideas of social justice extended far beyond India and had a profound influence on social movements worldwide. His philosophy inspired leaders like Martin Luther

King Jr. in the United States, Nelson Mandela in South Africa, and Cesar Chavez in the United States, all of whom adopted his principles of nonviolence and civil disobedience in their own struggles for justice. Gandhi's fight for social justice, grounded in nonviolence, remains an enduring legacy that continues to inspire movements for human rights, equality, and peace across the globe.

Conclusion

Mahatma Gandhi’s concept of social justice was not merely about legal rights or political freedom; it was a comprehensive vision that sought to transform society at its moral core. Through his emphasis on equality, nonviolence, and self-reliance, Gandhi worked to address the deep social, economic, and political inequities of his time. His ideas on social justice remain relevant today, providing a blueprint for movements that seek to foster a world where every individual, regardless of their caste, gender, or economic status, can live with dignity, equality, and peace.

Reference:

[1] Gandhi, M. K. (2018). *Hind swaraj.* New Delhi: Raj Kamal Prakashn privet limited.

[2] Gandhi, M. K. (2012). *Sarvodaya*. Ahamdabad: Nav Jeewan Trust. p. 20

[3] गांधी, एम. के. (1990). *हमारा क्लांक : अस्पृश्यता-निवारण पर महात्मा गांधी के लेखों का स्मारक*. नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन. पृ. 19

[4] माथूर, जगन्नाथ स्वरूप. (2000). *ट्रस्ट विश्व गांधीय विकल्प*. इलाहाबाद: प्रकाशन साहित्य भण्डार. पृ. 81

डुग्गर प्रदेश दी बुनाई सरबंधी लोककला

डॉ. शशि भारती*

rajputshashi009@gmail.com

कुसै बी प्रदेश कला थमां उत्थूं दे जनजीवन दी नरोई झलक लभदी ऐ। लोकें दी रैह्त-बैह्क उंदे रूचि रूझान, उंदे लाब्बे, गैह्ने-बन्धे, भाण्डे-टींडे उंदी धार्मिक आस्था विश्वासें ते रीति रवाजें दा पता उत्थूं दी लोक कला थमां लगदा ऐ। लोक कला च हत्थ कम्में दा टकोह्दा म्हत्व होंदा ऐ।

डुग्गर च हत्थै कन्नै कढ़ाई-बुनाई दा जिन्ना रवाज अज्जकल कोला कोई पजांह ब'रे पैह्लें हा उन्ना अज्ज नेईं ऐ, पैह्लें-पैह्लें लोक कुड़ियें गी घट्ट पढ़ांदे हे ते ओह् घरै दा कम्म करदियां ते बेह्ल लग्गनै पर कढ़ाई-बुनाई दा कम्म करदियां हां पैह्लें कढ़ाई बुनाई जनेही लोक कलाएं गी कुड़ियें आस्तै जरूरी समझेआ जंदा हा कुड़ियें दा गैह्ना समझेआ जंदा हा पर अज्जकल एह् सब किश खत्म होई गेदा ऐ।

कत्तने ते बुनने दी कला दी शुरूआत पच्छमी एशिया च नमें पत्थर जुगा दे सभनें थमां प्राचीन ग्राएं दे जेह्ड़े अवशेश मिले दे न उंदे कोला असेंगी कपड़ा उद्योग दी शुरू दी क्हानी लभदी ऐ इस काल च पत्तरें ते खल्ल बगैरा दे थाह्र मनुक्ख सणा, ते रू ते उन्न दे टल्ले बनाइयै लान लगी पेआ। त्रै ज्हार ई. पू. दे किश समें बाद सिंधु घाटी च कपाह् रा'ई जान लगी पर कपड़ा तेआर करने आस्तै कत्तने ते बुनने दी खोज जरूरी ही। कत्तने आस्तै तक्ली, तुकुआ ते बुनने आस्तै करछे जनेही पेचीदा मशीन दी खोज इस दी म्हान सफलता ही ते विकास क्रम च बल्लें-बल्लें होर चीज़ां बी बनन लग्गी पेइयां चर्खा कत्तना लोक जीवना दी प्रमुख कारीगिरी मन्नी जंदी ही। चर्खे पर कपाह् ते उन्न बगैरा कत्ती जंदी ही। पैह्ले ते एह् उद्योग जनानियें च आम हा पर हून दिन व दिन घटदा जा करदा ऐ। पर ग्राएं थाह्रें अजें बी बजुर्ग जनानियां इस कम्में गी करने च दिलचस्पी रखदियां न, उन्न बगैरा कत्तियै ओह् लोइयां ते पट्टू बनोआंदियां न।

कपड़ा बुनने दा कम्म अक्सर जलाह् जाति दे लोक मता करदे न। पर हुन जलाहें दे कन्नै होर बी केईं लोक इस कम्मा गी सिक्खन लगी पेदे न कीजे सरकारी शिक्षा केंद्रे च कपड़ा बुनने दी सखलाई शिक्षा दित्ती जंदी ही, पर जलाह् जाति दे लोकें च इस कम्मै गी करने दी म्हारत होंदी ऐ ओह् उन्न रूं बगैरा दियां केईं चाल्ली दियां जि'यां लोइयां, पट्टू, कम्बल, शाल, मफलर बगैरा बुनदे न। बुनाई दियां एह् चीजां खडिढयै पर बुनियां जंदियां न।

डुग्गर प्रदेश च बुनाई कन्नै सरबन्धत कलाएं दा रूप बक्ख-बक्ख किस्मां दियें चीजें च मिलदा ऐ। कढ़ाई-बुनाई बगैरा इत्थूं दी सैह्ज जनाना दस्तकारी ऐ जिसी महिला वर्ग बड़े चाऽ कन्नै सिखदा ऐ ते वनसबन्नियां चीजां तेआर करदा ऐ।

---

* **पी जी डोगरी डिपार्टमैण्ट, जम्मू यूनिवर्सिटी**

बुनाई दियां किस्माः-

1. सलाइयें दी बुनाई
2. क्रोशिए दी बुनाई
3. प्लासटक दी बुनाई
4. सणु बगैरा दी बुनाई
5. खग्गें तीलें ते एरे मरझाटे दी बुनाई।

1. **सलाइयें दी बुनाईः-** अक्सर उन्न पशम बगैरा कन्नै कीती जंदी ऐ ते अक्सर जनानियां इस कारीगिरी च म्हारत रखदियां न। सलाइयें दी बुनाई कन्नै तेआर होने आह्ली कला दे नमूने इस चाल्ली नः जनाने-मर्दाने ते बच्चे बुड्ढे लेई स्वैटर, कोटियां, जैकटां, टोपियां, दस्ताने, जराबां, निक्के न्याने दे सूटू-वूटू बगैरा शैल-सन्हाकड़े नमूने च रंग-बरंगी उन्ना बगैरा कन्नै बनाए जंदे न कन्नै, पशम धागे बगैरा दियें इ'नें दस्तकारियें गी तेआर करने आस्तै जेह्ड़ियां सलाइयां कम्मै च चलाइयां जंदियां न उंदा बी उन्न जां धागे दे मताबक नम्बर दिक्खेआ जंदा ऐ। मुट्टे-मुट्टे धागे ते उन्न जां धागे आस्तै घट्ट नम्बर दियां सलाइयां ते बरीक धागें जां उन्न गितै मते नम्बर दियां यानि बरीक सलाइयां कम्म औंदियां न। जम्मू प्रांत दा लाका प्हाड़ी ऐ ते इत्थूं दे लोक माल-मवेशी भिड्डां पालदे न। भिड्डें दी उन्न चरखै कत्तियै उसदे धागे दियां भांत-सभांतियां चीजां बनांदे न।

जि'याः- पट्टू, कम्बल, चादरां, कोटियां, स्वैटरां, टोपियां दस्ताने, बगैरा। उ'आं दिक्खेआ जा तां पट्टू कम्बल चादरां इक्कै जनेह् नांs ऐ ते बनाने दा तरीका बी इक्कै पर फ्ही बी फर्क जरूर ऐ। पट्टू इक रंगी उन्न दा होंदा ऐ ते उसदे कंढै पट्टी रंग बरंगें धागै नै कड्डी दी होंदी ऐ। चादर बिल्कुल साफ ते बड्डी होंदी ऐ। कम्बल रंग बरंगी उन्न रंगियै डब्बियें आह्ला डजैन बनाया जंदा ऐ। कम्बल दोह्रे बी बनाए जंदे न।

2. **क्रोशिए दी बुनाइः-** क्रोशिया इक चाल्ली दी सलाई होंदी ऐ जेह्दा अगला सिरा घुंडी आह्ला लेखा (Hook Type) बने दा होंदा ऐ। क्रोशिए दी बुनाई च अक्सर कुड़ियां मती म्हारत रखदियां न। ओह् क्रोशिए कन्नै केईं किस्में दियां चीजां तेआर करदियां न। जित्थें उन्न कन्नै बुनी दियां चीजां डुग्गर दे बसनीकें गी ठंडू कोला बचांदियां न। उत्थें क्रोशिए कन्नै बुनी दियां चीजां घरै गी इक नमां गै रूप दिंदियां न। तरपाई, स्टूल पर बछाए दा क्रोशिया दा अगींठी पोश ते रेडियो पर दित्ते दा रमाल कमरे दे गुहाड़ बी केईं गुणा बधाई ओड़दा हा। मजे दी गल्ल एह् ऐ जे इसी अपनी लोड़ मताबक उन्ना ते उ'ऐ जनेहा बनाया जाई सकदा। आमतौरा पर चिट्टे रंगै दी सूती अट्टी दा धाग्गा लेइयै बक्खरी-बक्खरी चाल्ली दे डिजाइन बनाए जंदे न पर मूल रूप च इक गै डिजाइन होंदा ऐ, जिसी जंजीरी आखदे न। जिसी जंजीरी बनाई आई गेई तां समझो सारा क्रोशिया गै आई गेआ।

3. **प्लासटक दी बुनाईः-** प्लासटक दी बुनाई कन्नै-कन्नै जनानियां केईं किस्में दियां चीजां बनाने च म्हारत रखदियां न। प्लासटक दी बरीक तार दे केईं किस्में दे डिजाइनें गुलदस्ते बनाए जंदे न। बक्ख-बक्ख डिजाइनें च छिक्कू-करण्डू बगैरा बी बनाए जंदे न ते कुड़ियां बी केईं किस्में दियां खड़ालियां बी प्लासटक दी तार कन्नै बनांदियां न। जि'यां गुड्डियां-कुत्ते, तोते-बिल्लियां, हाथी ते होर केईं किस्में दियां तस्वीरां बी प्लासटक कन्नै बनाइयां जंदियां न। प्लासटक दी तार कन्नै कुर्सियां बगैरा बी बुनियां जंदियां न ओह् अक्सर मर्द बुनदे न।

   लीरें ते रंगदार कागदें बगैरा कन्नै बी सजौट आस्तै केईं किस्में दियां चीजां बनाइयां जंदियां न। लीरें कन्नै निक्के ज्यानें आस्तै केईं किस्में दे गुड्डियां-पटोले बनांदे न। कुड़ियां रंग बरंगी लीरें गी मनके बगैरा लाइयै बोतला च पाइयै उसी शंगारी दिंदियां न।

4. **सणु दी बुनाईः-** सणु दियां बी केईं किस्में दियां चीजां बनाइयां जंदियां न। सण भन्नियै उसी केह्‌रा दोह्‌रा कत्तियै उसदे लच्छे बनाइयै उसी धोता जंदा ऐ। फ्ही उसी बक्ख-बक्ख कम्मै च प्रयोग कीत्ता जंदा ऐ जि'यां सौने लेई खट्टां आमतौरा पर सणु दियां गै बुनियां जंदियां न। घर च आम खट्टां ते सादियां बुनियां जंदियां न। पैह्‌ले ब्याहें सुत्तरें बगैरा च भेजने आह्‌ली खट्टा लाल, सैला, पीला बगैरा रंग पाइयै शैल सन्हाकड़ियां बुनतियां पाइयै बुनियां जंदियां हा। पर हुन ते इंदा रवाज गे बड़ा घट्ट होई गेदा ऐ। अज्जकल लोक लकड़ी ते फोल्डिंग बैड गै मते दिंदे न। इंदे इलावा करसानी धंधे च कम्म औने आलियां सणु दियां चीजां जि'यां त्रगड़ियां, छिक्के, जोतर, गज्जरा, जुगड़ ते डंगरे दे पाने लेई गलांs बगैरा बी बनाए जंदे न।

5. **खग्गे तीले ते एरे मरजाटे दी बुनाईः-** तीलें-खग्गें ते एरे-मरजाटे बगैरा थमां केईं किस्में दियां बुनाई आह्‌लियां चीजां तेआर कीतियां जंदियां न। एह् चीजां खरेलू जीवना च बड़ियां कम्म औंदियां न।

   कान्ने दी तालें गी चीरिए केईं किस्में दियां पक्खियां बनाइयां जंदियां न। पक्खियां बुनदे उंदे पर केईं किस्में दे डजैन पाए जंदे न। जि'यां लैह्‌रियां, डब्बियां, फुल्ल बगैरा। एह् सब डजैन इस समग्री गी बक्ख-बक्ख रंगे च रंगीयै बनाए जंदे न। जिस कन्नै पक्खी दी सुंदरता बधदी ऐ। पक्खी गी बन्जे जां स्टील दी डण्डी दी पूकनी लाई जंदी ऐ ते बाकी त्रोने पास्से रंग-बरंगे मोठ लाइयै सूई कन्नै सीता जंदा ऐ ते उस पर शैल सन्हाकड़ी झालर लाई जंदी ऐ। डण्डी पर कपड़ा लाइयै उस पर रंग-बरंगे फुम्मन लाए जंदे न।

सावती तीले गी धागे कन्नै सोए दी पक्खी बनाई जंदी ऐ। इ'यां केईं चाल्लीं कन्नै महिला वर्ग शैल सन्हाड़ियां पक्खियां घरें च तेआर करी लैंदियां न। सोहे दे दिनें ठंडे ब्हाऊ दे फनूके लैने तांई बांसा दियां पक्खियां बी बनाइयां जंदियां हियां। अज्ज तां घर-घर बिजली दे पक्खे, भाएं चला करदे न पर बिजली बंद होने पर खेत्तरै-पैलिये कम्म करदे बेल्लै बांसी पक्खू बी बड़े कारगर साबत होंदे न।

बिन्नेः-

घरै च बौह्‌ने लेई जनानियां केईं किस्में दे बिन्नू आपूं गै बनाई लैंदियां न। खग्गें कन्नै गोल बिन्ने बनाए जंदे न। घाई नां दे इक किस्मां दे घाs गी बड्डियै सकाया जंदा ऐ ते फ्ही उस गी गोल करदे उस पर सुऐ कन्नै

खग्गे लाए जंदे न ते बिन्ना तेआर कीता जंदा ऐ। खग्गो गी बी बक्ख-बक्ख रंगे कन्नै रंगेआ जंदा ऐ ते केईं किस्में दे डिजाइन बिन्ने पर पाए जंदे न।

छल्ली दे खग्गे कन्नै बी गोल किस्में दे बिन्ने बनाए जंदे न।

छाबड़ः-

(टोकरू) छाबडू टोकरू बगैरा घरें च केईं थाहूरें कम्म औंदे न। जि'यां रूट्टी बगैरा पाने लेई जां फ्ही दाने बगैरा रक्खने आस्तै एह् बड़े कारगर सिद्ध होंदे न। एह् छाबड़ू-टोकरू अक्सर गोल आकार च गै बनाए जंदे न। इनेंगी बनाने आस्तै बी खग्गे ते घाई (सरूट) बगैरा दा प्रयोग कीत्ता जंदा ऐ।

छज्ज बनानाः-

कान्ने दे गोल तीलें दे छज्ज बनाए जंदे न। छज्ज दाने छट्टने दे कम्म औंदा ऐ। छज्ज बनाने दा कम्म अक्सर रूटाल बगैरा जाति दे लोक गै करदे न। छज्ज बनाने आस्तै कक्करे, लोहे दी तार जां प्लासटक दी बरीक तार दा प्रयोग कीता जंदा ऐ। कक्करे आह्ला छज्ज मता निग्गर होंदा ऐ ते एह् बक्करे दी खल्लू कन्नै बनाए जंदे हे पर हुन इसदा प्रयोग नेईं दे बराबर ऐ।

एरे मरजाटे कन्नै लज्जां बी बट्टियां जंदियां न जेह्ड़ियां खुहा चा पानी कड्डने दे कम्म औंदियां न ते एह् कम्म अक्सर म्हाशे जाति दे लोक गै करदे न। इसदे इलावा मरजाटे दे बी बिन्ने बनाए जंदे न। मरजाटे दे तील्ले पुल्ले होंदे न ते उसी दराटी कन्नै वश्काह्रा दो हिस्से करियै बिन्ने बुने जंदे न ते जेह्ड़े तील्लें भरोचे दे होंदे न उनेंगी बश्काह्रा चीरियै खुरपे कन्नै ओह्दी गरी कुट्टी लैत्ती जंदी ऐ ते फ्ही बिन्ना बुनेआ जंदा ऐ। एह् बिन्ना वजन च बड़ा हौला होंदा ऐ ते मुल्ला च सस्ता। धार्मिक मौके पर इस चाल्ली बिन्ना दान पुन आस्तै मता बरतोंदा ऐ।

वन्जा दी बुनाईः-

जम्मू प्रातः प्हाड़ी लाका ऐ ते निक्के म्हल्ले ग्राएं च बंडोए दा ऐ ते उप्परली प्हाड़ी लाके गी छोड़ियै गभली पट्टी जि'यां बसोह्ली, रामकोट, रामनगर ते उसदे अग्गै जम्मू अखनूर बगैरा ते कंढ़ी लाके च बड़ी कारगार साबत होंदियां न पर मशीनी युग होने करी इसदा प्रयोग बड़ा घट्ट होई गेदा ऐ जां अक्खी लैओ जेह्ड़े ग्रांs शैह्रा कोला मते पिछड़े दे रेही गेदे न उत्थें इंदा प्रयोग अज्ज बी होआ करदा ऐ। जि'यां पक्खियां, मेज, कुर्सियां, छिक्कू, खारे, चंगरे, निक्के छिक्करू ते टोकरू बगैरा।

खजूरी दे पत्तरें दी बुनाईः-

खजूर दे पत्तरें दियां मतियां चीजां वस्तां बनदियां न। खजूर दे पत्तरें दियां छाबड़ियां, बिन्ने, किरनू, पनोटू बगैरा बनाए जंदे न। इस्सी बी पट्ठे आह्ला लेखा सकाइयै इस पर रंग बिरंगे रंगै कन्नै रंगेआ जंदा ऐ। खजूरा दे पत्तरें दा बिन्ना ते फूह्ड़ी बी बनाई जंदी ऐ। इ'यां ते पराली दी बी फूह्ड़ी बनाई जंदी ऐ पर शैल फूह्ड़ी खजूर दी गै होंदी ऐ। खजूर दे पत्तर असेंगी ज्यादातर कंढी लाकें च गै मिलदे न ते इसदे पत्तरें कन्नै स्यानियां जनानियां जां आक्खी लैओ बजुर्ग जनानियां भांत-भांत दियां चीजां बनाइयै अपनी कला दा नमूना पेश करदियां न।

इसदे इलावा कनका दी कान्नी दी बड़ियां खूबसूरत पक्खियां बनाई जंदियां न। जनानियां केईं रंग-बिरंगे धागें कन्नै इंदे च डजैन-बनांदियां न। पक्खी दे त्रौनें पास्से रंग बिरंगे गोटे-दार जां कपड़े दी झालर लाई इसदी खूबसूरती गी बी चार चन्न लाई दिंदियां न। कान्ने कन्नै छज्ज बगैरा बी बनाए जंदे न।

एह् ग्राएं दे हर घर च लब्भी जंदे न। छज्ज कन्नै केईं बारी अस छट्ट फटाकी बी करने आं यानि चौल, कनक, मक्क बगैरा दी फटाकी करनी होऐ।

बग्गड़ दियां जुड़ियां : बग्गड़ लम्मा-लम्मा बरीक घाs होंदा ऐ जेह्ड़ा ज्यादातर घाटै पर होंदा ऐ जित्थें डंगर नेईं पुज्जी सकदे। पैह्ले जमाने च जनानियां इसदे कन्नै चुल्ले-चौके च सोत-फंड दिंदियां हां। इस्सी रस्सी कन्नै गुंदी-गुंदी इसदियां जुड़ियां बनाई जंदियां हा। इसी सिर्फ ओह् चुल्ली चौके च गै बरतदे हे। कीजे पैह्लें लोकें च सुच्च बड़ी होंदी ही। पसार आंगन सोतने तांई बक्खरी ब्हारी होंदी ही।

इसदे इलावा पैह्ले लोक पीढ़ी बी बनांदे हे इसदा डिजाइन खट्टा कोला बक्खरा होंदा हा।

संदर्भ :

शास्त्री, केदारनाथ. (n.d.). *डोगरी निबंधावली*. डोगरी संस्था, जम्मू.

शर्मा, डॉ. चम्पा. (n.d.). *डुग्गर दा लोक जीवन*. डोगरी संस्थां, जम्मू.

पोस्ट ग्रैजुएट डोगरी डिपार्टमेंट, जम्मू यूनिवर्सिटी. (n.d.). *भारती फोकलोर*. जम्मू यूनिवर्सिटी, जम्मू.

रानी, डॉ सुषमा. (2021). *डुग्गर संस्कृति दी झलक*. अक्षय प्रकाशन, जम्मू.

डोगरी संस्था, जम्मू. (n.d.). *डुग्गर दियां लोक कलाः रजत जयंती अभिनन्दन ग्रंथ*. डोगरी संस्था, जम्मू.

पठानिया, प्रो. शशि. (2022). *डोगरी लोक-साहित्य ते डोगरा लोक-संस्कृति*. जम्मू एंड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज, जम्मू.

गोस्वामी, डॉ. ओम., & गुप्ता, अशोक. (Eds.). (1985/2015). *डुग्गर दा सांस्कृतिक इतिहास* (प्रथम संस्करण: 1985, द्वितीय संस्करण: 2015). जम्मू एंड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज, जम्मू.

कुमार, डॉ. नरेश. (n.d). *डुग्गरः प्राचीन भारतीय संस्कृति मूल्य, आधुनिक संदर्भ*.

भार्गव, डॉ. निर्मल. (n.d). *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति*. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

उपाध्याय, भगवत शरण. (n.d). *भारती कला और संस्कृति की भूमिका*. रणजीत प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स.

राची, दिनेश प्रसाद. (n.d). *लोक साहित्य और संस्कृति*. भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद.

शोभा, डॉ. सवित्री चन्द्र. (n.d). *समाज और संस्कृति*. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली.

विशेष आवश्यकता वाले (सीडब्ल्यूएसएन) छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन

रोशन लाल पटेल* **राजीव कुमार तिवारी†** **डॉ. पी. एन. मिश्र‡**
roshanbadwar@gmail.com **rajivtiwari1124@gmail.com** **pnathmishra@gmail.com**

संक्षेपिका:

मनुष्य गुणों से भरी एक खान के समान है, शिक्षा ही इसके कोषों को उजागर कर सकती है। शिक्षा मनुष्य के विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। सीडब्ल्यूएसएन पूर्ण रूप चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड्स है, जिसे हिंदी में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे कहा जाता है। दिव्यांगता मुख्य रूप से कई रूपों में दृष्टिगोचर होती है जैसे दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, वाकदोष या वाणी दोष, अस्थि बाधित ,मानसिक मंदता एवं पिछड़े बालक आदि। सीडब्ल्यूएसएन बच्चों में मानसिक योग्यता एवं बुद्धि लब्धि सामान्य बच्चों जैसी अथवा उनसे अधिक होती है। दिव्यांगता का दोष बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में बाधक होता है। सीडब्ल्यूएसएन बच्चे सामाजिक कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग नहीं लेते, उनमें एकाकीपन की भावना विद्यमान रहती है । कुछ बच्चे सामान्य स्कूलों में घर से आकर पढ़ते हैं जबकि कुछ बच्चे छात्रावास में रहकर छात्रावास से विद्यालय जाते हैं, जिनके लिए शासन स्तर पर खास सुविधाएं भी होती हैं। शोध का मुख्य उद्देश्य विशेष आवश्यकता वाले छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन करना था। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि, विशेष आवश्यकता वाले छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

मुख्य शब्द :

विशेष आवश्यकता वाले बच्चे (CWSN), शैक्षिक उपलब्धि, छात्रावासी विद्यार्थी, गैर छात्रावासी विद्यार्थी, दिव्यांगता, समावेशी शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण

* **शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)**

† **शोधार्थी, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)**

‡ **शोध-निर्देशक एवं प्राध्यापक, शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)**

प्रस्तावना:

मनुष्य गुणों से भरी एक खान के समान है, शिक्षा ही इसके कोषों को उजागर कर सकती है। शिक्षा मनुष्य के विकास की पूर्णता की अभिव्यक्ति है। शिक्षा के द्वारा ही इच्छा शक्ति की धारा पर सार्थक नियंत्रण स्थापित हो सकता है, शिक्षा के शब्द संग्रह अथवा शब्द समूह की स्मृति न देखकर विभिन्न शक्तियों के विकास के रूप में देखा जाना चाहिए। शिक्षा से ही व्यक्ति सही रूप में चिंतन करना सीखना है। मनुष्य की पहचान शिक्षा है।

सीडब्ल्यूएसएन का पूर्ण रूप चिल्ड्रेन विथ स्पेशल नीड्स है जिसे हिंदी में विशेष आवश्यकता वाले बच्चे कहा जाता है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे शारीरिक तथा मानसिक भिन्नता के कारण विशिष्ट कहे जाते हैं। इनमें सीखने की अक्षमता, बाध्यता तथा शारीरिक अक्षमता पाई जाती है। इस अशक्तता को निर्योग्यता, विकलांगता, बाधित तथा शारीरिक दोष के नाम से पुकारा जाता था, किंतु प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी के द्वारा अब इसे नया शब्द दिव्यांग दिया गया है जिससे ऐसे पीड़ित व्यक्तियों में हीन भावना न उपजे एवं समाज में उन्हें भी सम्मान मिले तथा उनमें निहित गुणों का विकास किया जा सके। ये बच्चे दृष्टि, श्रवण, वाणी तथा मंदबुद्धि सेरेब्रल पाल्सी, ऑटिज्म (आत्म केंद्रित) एवं अधिगम अक्षमता भी रखते हैं। कुछ बालकों में अटेंशन डिफिसिट हाइपर एक्टिविटी डिसऑर्डर (ध्यान अभाव सक्रियता विकार) पाया जाता है। ऐसे बालकों की शिक्षा विशेष आवश्यकता के साथ की जाती है क्योंकि इनकी शैक्षिक आवश्यकताएं अन्य सामान्य बालकों से पृथक होती हैं।

***विशेष आवश्यकता वाले बच्चे* :** विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की पहचान उनके व्यवहार, चलने-फिरने, बैठने-उठने तथा उनकी शारीरिक प्रवृत्ति से की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उनके कार्य करने की विधि, कार्यक्षमता तथा कार्य के परिणाम आदि से भी उनकी पहचान की जा सकती है।

शारीरिक अक्षमताओं (विशेष आवश्यकता वाले बच्चों) के प्रकार- आंशिक शारीरिक रूप से अक्षम या अशक्त बालक में दिव्यांगता प्रमुख रूप से कई रूपों में दृष्टिगोचर होती है- जैसे दृष्टिबाधित, श्रवण बाधित, वाक् दोष या वाणी दोष, अस्थिबाधित, मानसिक मंदता एवं पिछड़े बालक आदि। इन श्रेणियों के अतिरिक्त कक्षा में प्रतिभाशाली/ विशेष योग्यता वाले विद्यार्थी भी होते हैं जिनको पढ़ाते समय विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है।लड़कियों के लिए विशेष शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की अक्षमता की विशेषताएं एवं समस्याएं:- सामान्यतः दिव्यांगता तथा अक्षमता की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं-

- सीडब्ल्यूएसएन बच्चों की मानसिक योग्यता एवं बुद्धि लब्धि सामान्य बच्चों जैसी अथवा उनसे अधिक होती है।
- सीडब्ल्यूएसएन बच्चे सामान्य बच्चों की अपेक्षा शारीरिक रूप से निर्बल होते हैं।
- दिव्यांगता का दोष बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में बाधक होता है।

- सीडब्ल्यूएसएन बच्चे सामाजिक कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग नहीं लेते इनमें एकाकीपन की भावना विद्यमान रहती है।
- सीडब्ल्यूएसएन बच्चे सामाजिक दृष्टि से भी भलीभांति समायोजन नहीं कर पाते फलतः अपने साथियों तथा समाज के अन्य व्यक्तियों द्वारा वे उपहास के पात्र बनते हैं।
- सीडब्ल्यूएसएन बच्चों में अपनी शारीरिक अपंगता के कारण हीन भावना पैदा हो जाती है जो उनके व्यक्तित्व को बौना बनाए रखती है।
- सीडब्ल्यूएसएन बच्चे अपनी विकलांगता की कमी किसी न किसी दूसरे क्षेत्र में पूर्ण कर लेते हैं, जैसे किसी कलात्मक कार्य में प्रवीणता, संगीत में रुचि, वाद-विवाद तथा अध्ययन में बहुत आगे होते हैं।

शोधार्थी द्वारा उपरोक्त विशेषताओं एवं समस्याओं को देखते हुए ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर शोध करने का निर्णय लेते हुए CWSN बच्चों तथा छात्रावासी बच्चों के बारे में बारीकी से अध्ययन किया गया और छात्रवासी एवं गैर छात्रवासी विद्यार्थियों से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गई।

उद्देश्य:

1. विशेष आवश्यकता वाले छात्रवासी और गैर छात्रवासी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि की वास्तविक स्थिति का अध्ययन करना।
2. शासकीय छात्रावासों एवं विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता का अध्ययन करना।
3. शासकीय विद्यालयों एवं छात्रावासों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन की स्थिति का अध्ययन करना।

परिकल्पना:

1. विशेष आवश्यकता वाले छात्रवासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।
2. शासकीय छात्रावासों एवं शासकीय विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध हैं।
3. शासकीय विद्यालयों एवं छात्रावासों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन में सार्थक वृद्धि हुई है।

न्यादर्श:

प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत 10 विद्यालयों के कक्षा 6 के 25 छात्रवासी एवं 25 गैर छात्रावासी विशेष आवश्यकता वाले बच्चों पर शोध कार्य किया गया। साथ ही 30 शिक्षकों, दो छात्रावास अधीक्षकों ,10 संस्था प्रधानों को भी न्यादर्श के रूप में चुना गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या:

परीक्षण पत्रक द्वारा छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों का परीक्षण किया गया, प्राप्त अंकों का क्षेत्रवार मध्यमान एवं मानक विचलन ज्ञात करने के पश्चात टी-मान ज्ञात कर विश्लेषण किया गया, जो सारणी 1.1 में अवलोकनीय है।

सारणी 1.1 शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय के कक्षा 6 के विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में गैर छात्रवासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का सांख्यिकी विश्लेषण

समूह	छात्रावासी विद्यार्थी	गैर छात्रावासी विद्यार्थी
समूह की संख्या (N)	25	25
मध्यमान (M)	52.60	47.40
मानक विचलन (SD)	17.27	18.61

- The value of t = 1.02
- df = $(N_1\text{-}1) + (N_2\text{-}1)$
- df = (25-1) + (25-1)
- df = 24+24
- df = 48

उपरोक्त सारणी के अनुसार स्वतंत्रता की कोटि 48 के लिए टी का मानक मान 0.01 विश्वास स्तर पर 2.68 तथा 0.05 विश्वास स्तर पर 2.01 है, जबकि गणना से प्राप्त टी का मन 1.02 है, जो कि दोनों विश्वास स्तरों के मानों से कम है। अतः शोध क्षेत्र में शासकीय पूर्व माध्यमिक विद्यालय के कक्षा 6 के विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में छात्रवासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

सारणी क्रमांक 1.2: शासकीय छात्रावासों एवं शासकीय विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता का अध्ययन

क्र.	जानकारी संकलन का स्त्रोत	न्यादर्श में चयनित कुल संख्या	विशेष प्रशिक्षण प्राप्त		सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त		अप्रशिक्षित	
			संख्या	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	संस्था प्रमुख	10	09	90%	01	10%	-	-
2	छात्रावास अधीक्षक	02	02	100%	-	-	-	-
3	शिक्षक	30	28	93.33%	02	6.67%	-	-

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि शोध क्षेत्र के शासकीय विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों के प्रशिक्षण के बारे में 90 प्रतिशत संस्था प्रमुख, शत-प्रतिशत छात्रावास अधीक्षक व 92.33 प्रतिशत शिक्षक यह मानते हैं कि शिक्षक विशेष प्रशिक्षण प्राप्त है जबकि 10 प्रतिशत संस्था प्रमुख व 6.67 प्रतिशत शिक्षक विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों को केवल सामान्य प्रशिक्षण प्राप्त मानते हैं।

अतः उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि शासकीय छात्रावासों एवं शासकीय विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध हैं।

सारणी क्रमांक 1.3:

शासकीय विद्यालयों एवं छात्रावासों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन की स्थिति का अध्ययन

क्र.	जानकारी संकलन स्त्रोत	न्यादर्श में चयनित कुल संख्या	बच्चों के नामांकन में वृद्धि से सहमत		बच्चों के नामांकन में वृद्धि से असहमत	
			संख्या	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	संस्था प्रमुख	10	08	80%	02	20.00%
2	छात्रावास अधीक्षक	02	02	100%	-	-
3	शिक्षक	30	28	93.33%	02	6.66%

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि शोध क्षेत्र के 80% संस्था प्रमुख, शत -प्रतिशत छात्रावास अधीक्षक, 93.33 प्रतिशत शिक्षकों का यह मानना है कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन में वृद्धि हुई है जबकि 20% संस्था प्रमुख व 6.66% शिक्षक यह मानते हैं कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन में वृद्धि नहीं हुई है।

अतः उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि शोध क्षेत्र में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन में वृद्धि हुई है।

निष्कर्ष:

प्रदत्तों के विश्लेषण के उपरांत जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, उनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है। शासकीय छात्रावास एवं शासकीय विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को पढ़ाने के लिए पर्याप्त प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध हैं। शासकीय विद्यालय एवं छात्रावास में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के नामांकन में सार्थक वृद्धि हुई है।

सुझावः

- विशेष आवश्यकता वाले बच्चे स्वयं को अनेक समस्याओं से ग्रसित पाते हैं, यदि इन समस्याओं का समाधान नहीं हो पाता है तो, उनमें मानसिक द्वंद्व तथा तनाव बढ़ जाता है, इसलिए शिक्षक को उनकी समस्या का समाधान ढूंढना अति आवश्यक है।
- विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों में हीन भावना न पनपे, इसके लिए शिक्षकों द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को सदैव प्रोत्साहित करते रहना चाहिए तथा सामान्य बच्चों की तरह सामानुभूति रखना चाहिए।
- शासन, प्रशासन व अभिभावकों द्वारा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के समुचित वृद्धि एवं विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करना चाहिए।
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का समय-समय पर चिकित्सक द्वारा जांच करवा कर उपचार अवश्य करना चाहिए।
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के अभिभावकों की बैठक समय-समय पर होनी चाहिए। उन्हें विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति कैसे व्यवहार व देखभाल करना है इसका प्रशिक्षण अवश्य प्रदान करना चाहिए।

संदर्भः

कौल, लोकेश. (1998). *शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली*. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि..

तिवारी, गोविंद. (1985). *शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के मूलाधार*. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर.

त्रिपाठी, आर. बी. (1986). *अनुसंधान के मूल तत्व*. इंदौर: खालसा पब्लिकेशन.

पाण्डेय, कृष्ण गोविंद. (2004). शारीरिक क्रियाओं व खेलकूद द्वारा मानसिक स्वास्थ्य का विकास. *एनसीईआरटी प्राथमिक शिक्षक*, *29*(4), 56-60. नई दिल्ली: एनसीईआरटी.

राय, पारसनाथ. (1997). *अनुसंधान परिचय*. आगरा: जैन एण्ड संस प्रिंटर्स.

सिंह, एच. पी., & सिंह, ज्योति. (2009). *स्वस्थ जीवन के संदेश*. रीवा: जिला रेड क्रॉस सोसाइटी.

सामाजिक बहिष्करण की अवधारणा : एक सारगर्भित अध्ययन

चंद्रमणि राय*

chandramanirai1995@gmail.com

सामाजिक बहिष्करण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई समुदाय अथवा समाज का एक तबका समाज की गतिविधियों में भागीदारी से पूर्ण अथवा आंशिक रूप से वंचित हो जाता है। परिणाम स्वरूप उन्हें गरीबी, वंचना, असमानता और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। सामाजिक बहिष्करण भाषा, जाति, धर्म, संस्कृति, नस्ल, लिंग, शारीरिक अक्षमता, भौगोलिक क्षेत्र, विशेषज्ञता आदि आधारित हो सकता है। वस्तुतः सामाजिक बहिष्करण की जड़ें ऐतिहासिक हैं परंतु अपने आधुनिक संदर्भ में अथवा ''सामाजिक बहिष्करण'' पद के रूप में यह सन 1974 में रेने लेनॉर द्वारा परिभाषित हुआ। आधुनिक संदर्भों में इसका मुख्य जोर सरकार की विकास योजनाओं द्वारा उत्तपन्न बहिष्करण तथा लेबर-मार्किट संबंधों पर है। यही नहीं बल्कि समय बीतने के साथ-साथ इसने अपने भीतर अनेक तत्वों को समावेशित किया है। हिलेरी सिल्वर के अनुसार सामाजिक बहिष्करण के क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक, भौतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भौगोलिक तत्व सम्मिलित हैं। जो निम्नलिखित हैं-

सिल्वर ने इसके बृहद क्षेत्रों में 'जीवन यापन हेतु सुरक्षित परिस्थिति का आभाव तथा बेरोजगारी, संपत्ति अथवा भूमि अधिग्रहण, अशिक्षा, विकलांगता, गरीबी तथा वंचना, हाशियाकरण, सांस्कृतिक पूंजी का ह्रास, नस्लीय व सामाजिक भेदभाव, कानूनी तथा लोकतांत्रिक भागीदारी से बहिष्करण आदि तत्वों सम्मिलित किया है' (डेली & सिल्वर, 2008)[1]

यूनाइटेड किंगडम के डिपार्टमेंट फॉर इंटरनेशनल डेवलोपमेन्ट के अनुसार सामाजिक बहिष्करण 'एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कुछ समूह विशेष एक निश्चित/व्यस्थित प्रक्रिया के द्वारा हानि उठाते हैं। क्योंकि उनके साथ नृजातीयता, नश्ल, धर्म, लैंगिक झुकाव, जाति, वंश, लिंग, आयु, शारीरिक अक्षमता, HIV संक्रमण, विस्थापित अवस्था एवं निवास स्थान के आधार पर भेदभाव किया जाता है (जीएसडीआरसी, 2015)।'[2]

नाइला कबीर के अनुसार 'सामाजिक बहिष्करण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अथवा समुदाय आंशिक अथवा पूर्णरूपेण उस समाज में भागीदारी से वंचित हो जाते हैं, जिसमें वो निवास करते हैं' (कबीर, 2005)।[3]

***पी-एच. डी. शोधार्थी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

डॉ. प्रकाश लुईश के अनुसार 'सामाजिक बहिष्करण भेदभावपूर्ण जीवनचर्या का शक्तिशाली आधार है। मानवीय विकास के चरण में बहिष्करण कुछ निश्चित लोगों के समूह को जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक क्षेत्रों से पृथक्कृत करने का माध्यम बन चुका है (लुइस, 2015)।'[4]

इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि कुछ लोगों के लिए सामाजिक बहिष्करण जनित हानिकारक परिस्थितियां कुछ लोगों के लिए लाभ का विषय बन जाती हैं। वस्तुतः सामाजिक बहिष्करण निम्नलिखित पहलुओं को समेटे हुए है-

I. सामाजिक बहिष्करण संपत्ति से स्वामित्व का हरण है।
II. सामाजिक बहिष्करण एक अथवा अधिक क्षेत्रों से अलाभान्वित एवं हाशियाकृत करने की प्रक्रिया है।
III. यह स्वत्वहरण, गरीबी, वंचना एवं असमानता उत्तपन्न करती है ।
IV. इसके द्वारा अधिकारों, प्रतिस्पर्धा एवं छमता का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से हरण कर लिया जाता है। जिसके कारण व्यक्ति अथवा समुदाय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में उचित भागीदारी से वंचित रह जाता है।
V. यह सार्वजनिक सेवाओं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, आधारभूत सेवाएं आदि के लाभों से वंचित करता है।
VI. यह व्यक्ति अथवा समुदाय के सामाजिक ताने बाने अथवा जुड़ाव को नष्ट कर देता है।
VII. सामाजिक बहिष्करण गरिमा, मानवाधिकारों एवं अस्मिता के हरण से भी संबंधित है।
VIII. यह समाज में पदानुक्रम निर्माण करता है। जिसके द्वारा पहले से ही शोषित तबके पर विभिन्न माध्यमों के द्वारा अनर्गल प्रतिबंध थोपे जाते हैं तथा उनका शोषण किया जाता है।
IX. सामाजिक बहिष्करण में एक कि हानि दूसरे के लाभ में परिवर्तित हो जाती है। जिसके कारण हिंसा की उतपत्ति होती है।
X. यह कभी-कभी समान लोगों के बीच भी निर्योग्यताएँ आरोपित करती है।

स्पष्ट है कि सामाजिक बहिष्करण सैद्धांतिक दृष्टि से अत्यंत व्यापक क्षेत्र का अवगाहन करता है। परंतु फिर भी एशियाई विकास बैंक के लिए लिखे अपने लेख "सोशल एक्सक्लूशन : कांसेप्ट, एप्पलीकेशन एंड स्क्रूटनी" में अमर्त्य सेन ने इसके दो महत्वपूर्ण भागों; (क) सक्रिय बहिष्करण तथा (ख) निष्क्रिय बहिष्करण की चर्चा की है(सेन, 2005)'।[5]

सक्रिय बहिष्करण अर्थात ऐसा सामाजिक बहिष्करण जो किसी सक्षम एवं उत्तरदायी संस्था द्वारा निर्मित योजनाओं एवं नियमों के माध्यम से आता है। कई बार यह ऐसी योजनाओं के माध्यम से भी उपजता है जिनमें प्रत्यक्षतः नहीं अपितु उनके मूल में बहिष्करण के तत्व विद्यमान होते हैं। राजनीतिक बहिष्करण जैसे; मताधिकार से वंचित कर देना इसी प्रकार के सक्रिय बहिष्करण का उदाहरण है। उदाहरणतया ऐसे बहिष्करण

का सामना अप्रवासी एवं शरणार्थियों को करना पड़ता है। इन्हें आवश्यक राजनीतिक हैसियत नहीं प्राप्त होती है। जिसके कारण इन्हें विभिन्न प्रकार की वंचनाओं एवं भेदभावों का सामना करना पड़ता है। यूरोप, एशिया समेत सम्पूर्ण विश्व में अल्पसंख्यकों को इस प्रकार के बहिष्करण से दो चार होना पड़ता है। फ्रांस एवं जर्मनी में शरणार्थियों को नागरिकता देने संबंधी कानून अत्यंत कठोर हैं। जिसके कारण उन्हें मताधिकार से वंचित रहना पड़ता है। मताधिकार से वंचित होना अपने साथ कई निर्योग्यताओं तथा आर्थिक अलगावों को भी आरोपित करता है। जिसके कारण गरीबी एवं हाशियरण बढ़ता है। भारत में भी बंग्लादेशी शरणार्थियों की समस्या कुछ इसी प्रकार की है। पूरे एशिया में रोहंगिया शरणार्थियों को भी ऐसे बहिष्करण का सामना करना पड़ रहा है। सक्रिय बहिष्करण का एक और महत्वपूर्ण उदाहरण सरकार की औद्योगिक नीतियां हैं। किन्हीं विशेष क्षेत्रों में ही महत्वपूर्ण एवं रोजगारपरक उद्योगों की स्थापना अन्य क्षेत्र के निवासियों को स्वतः ही विभिन्न प्रकार के लाभों से वंचित कर देती है। कोविड – 19 वायरस से आयी महामारी के कारण उपजी मजदूरों के पलायन की स्थिति ने इस प्रकार के बहिष्करण को स्पष्ट रूप से उद्घाटित किया है।

निष्क्रिय बहिष्करण अर्थात ऐसा सामाजिक बहिष्करण जो किसी संस्था द्वारा जानबूझकर अथवा किसी उद्देश्य हेतु नहीं किया जाता है। अपितु यह सामाजिक ताने बाने का उपज होता है अथवा कुछ सामाजिक मूल्यों के समुच्चय का उपज होता है। जैसे भारत जैसे देश में विद्यमान जाति व्यवस्था में ही सामाजिक बहिष्करण के तत्व विद्यमान हैं। यह किसी निश्चित जातीय समुदाय पर मात्र उसके जन्म के आधार पर निर्योग्यताएँ आरोपित करती है। एक अन्य उदाहरण मंद अर्थव्यवस्था जनित बेरोजगारी एवं गरीबी भी है। ऐसी अर्थव्यवस्था में सरकार अथवा जिम्मेदार संस्था की नीतियां नहीं बल्कि उसकी स्वयं की कमजोरियां होती हैं। ऐसी अर्थव्यवस्था में लोग स्वतः ही गरीबी एवं अलगाव के शिकार होते हैं। जम्मू कश्मीर से कश्मीरी पंडितों का पलायन सरकार की असफलता से अधिक वहां बढ़ते वहाबी कट्टरपंथ का नतीजा था। जम्मू कश्मीर का बहुसंख्यक मुसलमान अपने कुछ कट्टर धार्मिक मूल्यों के साथ संबद्ध था, जिनका समायोजन वह अल्पसंख्यक कश्मीरी पंडितों के साथ नहीं कर पाया। परिणामस्वरूप हिंसक माध्यमों का सहारा लिया गया और कश्मीरी पंडितों को पलायन का सामना करना पड़ा।

सामाजिक बहिष्करण के लिए उत्तरदायी महत्वपूर्ण तत्व –

1. **जाति आधारित बहिष्करण-** अपने शास्त्रीय एवं आधुनिक दोनो ही संदर्भों में जाति भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सामाजिक बहिष्करण का सर्वाधिक ध्यान देने योग्य पहलू है। चुकी सामाजिक बहिष्करण नामक अवधारणा की उत्पत्ति सत्तर-अस्सी के दसक की है इसलिए इसका यह तातपर्य नहीं है कि सामाजिक बहिष्करण की परिस्थितियां पहले मौजूद ही नहीं थीं। हां, यह अवश्य है कि "सामाजिक बहिष्करण" नामक शब्द युग्म ने अपने आधुनिक संदर्भों में एक विशेष अर्थगाम्भीर्य को धारण किया है। अतः जाति व्यवस्था जनित बहिष्करण के मुद्दों को एकीकृत (शास्त्रीय एवं आधुनिक) करके देखना अधिक सुगम एवं गोचर होगा। भारतीय जातीय व्यवस्था जनित बहिष्करण की कई परतें हैं जो जातीय

आधार पर वर्जनाएं आरोपित करती हैं। जिसके कारण व्यक्ति अथवा जातीय समूह सम्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों में अपनी पूरी छमता के साथ भागीदारी नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप गरीबी, वंचना, बेरोजगारी, भेदभाव एवं हाशियाकरण के शिकार लोग और पददलित होते जाते हैं तथा इन्ही के समानांतर इन वर्जनाओं के कारण कुछ समुदाय लाभ ग्रहण करते हैं। किसी भी अन्य समाजों के भांति भारत में भी समाजिक बहिष्करण समाज के संरचना पर निर्भर करता है। समाज को समाजिक संरचना किसी विशेष समाज की भूमिका और प्रस्थिति के क्रमपरिवर्तन और संयोजन के आलावा कुछ और नहीं है। इस तर्क के आधार पर हम कह सकते हैं कि दलित समुदाय को हिंदू समाज के सभी अधिकारों से वंचित किया गया। उनको जो कुछ भी दिया गया उसके साथ भी तिरस्कार और कलंक को जोड़ दिया गया। इस आधार पर कहा जा सकता है किस अपवर्जना के लिए कोई व्यक्ति या सामाजिक समूह जिम्मेवार नहीं है वरन वह सामाजिक संरचना है जो उनको भूमिका और प्रस्थिति का निर्धारण करती है, इसलिए सामाजिक संरचना सामाजिक बहिष्करण का प्रमुख कारण है।

समाजिक बहिष्करण व्यक्ति के भूमिका और प्रस्थिति पर निर्भर करता है, जाति आधारित समाजिक बहिष्करण सामूहिक अस्मिता पर निर्भर करता है। इस जाति व्यवस्था में पूरे जाति समूह पर कलंक व अपवर्जन रहता है अर्थात व्यक्ति कि व्यक्तिगत उपलब्धि एवं आर्थिक, राजनितिक और शैक्षणिक गतिशीलता के बाद भी यह सामाजिक बहिष्करण बना ही रहता है। इस प्रकार सामाजिक बहिष्करण, सामूहिक प्रकृति का होता है, व्यक्तिगत नहीं।

जाति के आधार पर समाजिक बहिष्करण जीवन के किसी एक आयाम में नहीं वरन् यह बहिष्करण बहुआयामी होता है, इस प्रकार सामाजिक बहिष्करण की प्रकृति बहुआयामी होता है।

सामाजिक बहिष्करण एक गतिशील प्रक्रिया है जो सतत चलती रहती है, इसका अपना लंबा इतिहास होता है, जाति के आधार पर सामाजिक बहिष्करण कोई कुछ सौ साल की बात नहीं वरन् यह हजारों साल से चलता आ रहा है, दलित समुदाय की कई पीढ़ियां इस अपवर्जन को झेल रही हैं, अतः सामाजिक बहिष्करण की एक प्रमुख प्रकृति ऐतिहासिकता को रेखांकित किया जा सकता है।

सामाजिक बहिष्करण अपने आप में घटित नहीं होता है इसके लिए कोई न कोई (एक्टर) कर्ता होता है, इसके मूल में कोई न कोई एजेंसी होती है जो कर्ता को इसके लिए दूसरे समूह के प्रति व्यवहार को निर्धारित करती है, जाति आधारित सामाजिक बहिष्करण में जाति व्यव्स्था द्वारा प्रत्येक जाति समूहों के लिए दूसरे जाति समूहों के प्रति आचार, व्यवहार निर्धारित है जो तमाम प्रथा, संस्कार के माध्यम से उच्चता निम्नता का निर्धारण होता है फिर उसके अनुसार एक दूसरे से व्यवहार किया जाता है, इस प्रकार सामाजिक बहिष्करण के प्रमुख प्रकृति में उसके एजेंसी का होना भी प्रमुख है

जाति व्यवस्था जनित बहिष्करण को तत्कालीन संदर्भो में समझने के लिए हमें निम्नलिखित पांच तत्वों का विश्लेषण करना होगा –

a) सामाजिक-आर्थिक स्थिति
b) शैक्षणिक स्तर
c) स्वास्थ्य और सेक्सुअलिटी
d) हिंसा एवं सामाजिक पूंजी
e) रोजगार एवं आर्थिक गतिविधियां

सामाजिक-आर्थिक स्थिति – भारतीय समाज में विभिन्न जातियों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर भिन्न है। जातीय समुदायों की सामाजिक हैसियत उनके जन्म से ही निर्धारित हो जाती है। परंतु यह तथ्य भी शत प्रतिशत सत्य है कि जातियों की आर्थिक स्थिति भी उनकी सामाजिक हैसियत से बहुत हद तक प्रभावित होती है। क्योंकि यहां जातीय समुदायों के व्यवसाय जन्मना निर्धारित होते हैं। जो कुछ के लिए लाभ का तो अन्यों के लिए हानि का कारण बनते हैं। हालांकि उदारवादी अर्थव्यवस्था एवं वैश्वीकरण का प्रभाव जाति व्यवस्था पर भी पड़ा है और जाति के बंधन कुछ कमजोर हुए हैं। जातीय बहिष्करण के इस प्रतिरूप को समझने के लिए उदाहरण स्वरूप अनुसूचित जाति के व्यावसायिक पैटर्न को देखते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में अनुसूचित जाति की कुल आबादी 18.6% है। ये आबादी घरेलू, दैनिक मजदूरी, छोटे-मोटे स्वरोजगार तथा खेतिहर मजदूरी के साथ- साथ सीमित स्तर पर "लोन लैंड" तथा अत्यंत सीमित निजी जमीन पर खेती भी करती है। NSS द्वारा प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सन 2000 में गंवई क्षेत्रों में इनकी कुल आबादी का लगभग 17% खेती से संबंधित स्वरोजगार पर आश्रित था। जबकि इनकी कुल आबादी का 12% निजी व्यवसायों से जुड़ा है। अतः ऐसे संसाधन जहां से इन्हें सतत और निश्चित आय प्रप्त हो, औसतन 28% है। जो कि अन्यों के 56% के मुकाबले बहुत कम है। शहरी क्षेत्रों में भी यह अनुपात 27% के मुकाबले 35.5% का है। इसका परिणाम यह है कि गंवई क्षेत्रों में इनकी कुल आबादी का 61.40% तथा शहरी क्षेत्रों में 26% दैनिक मजदूरी पर आश्रित है। जो अन्यों के 25.5% तथा 7.45% के तुलना में बहुत अधिक है। शहरी क्षेत्रों में इनकी कुल आबादी का लगभग 38% नियत एवं वैतनिक कार्यों पर आश्रित है। इस प्रकार इनकी कुल आबादी का गंवई क्षेत्रों में लगभग 62% तथा शहरी क्षेत्रों में लगभग 63% भाग निर्वाह मजदूरी पर आश्रित है। अतः स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति के पास निश्चित आय के स्रोत अत्यंत सीमित हैं। जिसके कारण इनकी अन्यों पर निर्भरता बढ़ती है। यह निर्भरता प्राचीन एवं सांस्थानिक तो है ही परंतु साथ ही साथ उदारवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत भी इसपर कुछ व्यापक असर नहीं पड़ा है। इस प्रकार बहिष्करण का यह रूप वर्तमान समय में भी थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ सतत रूप से गतिमान है।

शैक्षणिक स्तर – भारतीय जातीय व्यवस्था में ऐसी जातियां जिनका आय स्तर सीमित है, उनके बच्चों को आवश्यक शिक्षा नहीं प्राप्त होती है। ऐसी अवस्था में इनके बच्चे कभी विद्यालय जाते ही नहीं हैं अथवा जाते भी हैं तो बीच में ही पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। शिक्षा के अपवर्जन की यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। हालांकि सन 2000 के बाद से अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के साक्षरता दर में संतोषजनक वृद्धि देखने को मिल रही है। परंतु यह भी सत्य है कि मात्र साक्षरता दर में वृद्धि ही वास्तविक

कहानी नहीं है। 10 नवंबर, 2013 को टाइम्स ऑफ इंडिया में छपे आंकड़ों के अनुसार सन 2001 की तुलना में 2011 में अनुसूचित जाति की साक्षरता दर में कुल 11.4% की वृद्धि हुई है तथा यह राष्ट्रीय औसत 73% के मुकाबले 66.1% पर पहुंच गया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण छलांग महिलाओं ने लगाई है। सन 2001 में अनुसूचित जाति की महिलाओं का साक्षरता दर 41.9% थी। जो कि 2011 में 14.6% बढ़कर 56.5% हो गयी। वहीं अनुसूचित जाति के पुरुषों की साक्षरता दर 2001 में 66.7% थी जो कि 2011 में 8.5% वृद्धि के साथ 75.2% हो गयी। अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर में भी सन 2001 से 2011 के बीच 11.9% की वृद्धि दर्ज की गयी। सन 2001 में अनुसूचित जनजाति की महिलाओं की साक्षरता दर 34.8% थी। जो कि 2011 में 14.6% बढ़कर 49.4% हो गयी । वहीं अनुसूचित जनजाति के पुरुषों का साक्षरता दर 2001 में 59.1% थी जो कि 2011 में 9.4%% वृद्धि के साथ 68.5% हो गयी ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हाल के वर्षों में संवैधानिक उपायों एवं सरकारी उत्तरदायित्वों के कारण अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर में व्यापक वृद्धि हुई है। परंतु फिर भी यह राष्ट्रीय अनुपात की तुलना में कम है।

स्वास्थ्य और सेक्सुअलिटी - भारत में जातीय भेदभाव का सामना कर रहे तबकों की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच अत्यंत दूभर है। यही नहीं इनमें कुपोषण भी भारी मात्रा में विद्यमान है। इन सब के कारण इन समुदायों में शिशु एवं मातृ मृत्यु भी अन्यों की अपेक्षा 33% से 100% अधिक है। नेशनल फैमिली प्लानिंग एंड हेल्थ सर्वे-3 के अनुसार अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति में शिशु मृत्यु दर प्रति हजार पर क्रमशः 64.4 तथा 62.1 है। इसी प्रकार यहां मातृ मृत्यु दर भी अधिक है। बहिष्करण का सामना कर रहे जातीय समुदायों में विभिन्न प्रकार की बीमारियां भी अन्यों के तुलना में अधिक होती हैं। जिसके कारण इनकी जीवन प्रत्याशा भी कम होती है।

भारत में SC/ST समाजों में बहुत ही कम उम्र में मां-बाप बनने की प्रवृति है। जिसके कारण बच्चों की परवरिश सही ढंग से नहीं हो पाती है। कम उम्र में ही मां अथवा पिता की मृत्यु हो जाने पर बहुत सारे बच्चों को बिना मां-बाप के ही बड़ा होना पड़ता है। इन समुदायों में शिक्षा के अभाव एवं सामाजिक परिवेश में जागरूकता के अभाव के कारण बहुत सारे बच्चे परिपक्व उम्र से पहले ही शारीरिक संबंध बनाने को मजबूर होते हैं।

हिंसा एवं सामाजिक पूंजी – सामाजिक पूंजी एवं हिंसा का स्तर एक दूसरे से गुथें हुए हैं। जिन समाजों में सामाजिक बंधन एवं संप्रेषण मजबूत होता है, वहां हिंसा की संभावना भी कम होती है और जिन समाजों में हिंसा का स्तर अधिक होता है वहां सामाजिक पूंजी का संरक्षण भी दुर्लभ हो जाता है। **प्रोस्पेरेटी इंडेक्स – 2023** में भारत 101वें स्थान पर है। दूसरे शब्दों में यह समाजीक पूंजी के स्तर को प्रदर्शित करता है जो कि अत्यंत निम्न स्तर पर है। सामाजिक पूंजी को मजबूत करने के लिए पड़ोसियों के बीच आपसी संबंधों का

प्रगाढ़ होना तथा आपसी संवाद अतिआवश्यक है। ऐसा होने पर एक-दूसरे पर विश्वास तथा एक-दूसरे के प्रति अपराध में कमी आती है। परंतु भारतीय समाज विभिन्न जातियों में विभक्त है और साथ ही साथ एक-दूसरे पर विश्वास भी नहीं करता। परिणामस्वरूप आए दिन जातीय हिंसा की घटनाएं सामने आती रहती हैं और इस हिंसा के शिकार दलित, अति पिछड़े एवं जनजातीय समुदाय अधिक होते हैं। आए दिन नवीन आक्रामक संगठनों का निर्माण इसका उदाहरण है।

रोजगार – भारत में जाति आधारित बहिष्करण सीधे तौर पर रोजगार से जुड़ा है। छुआछूत का सामना कर चुकी जातियां इसकी सर्वाधिक शिकार होती हैं। भारतीय जाति व्यवस्था का ढांचा ही ऐसा है जहां दलितों और अतिपिछड़ों के पास निश्चित तथा सतत आय के स्रोत अत्यंत सीमित हैं। यहां अधिकतर जमीनों पर कृषक तथा मार्शल जातियों का कब्जा है जबकि व्यवसाय पर वैश्य समाज का। उदारवाद एवं वैश्वीकरण के दौर में इसमें बहुत सीमित परिवर्तन ही दृष्टिगोचर होता है। आज भी अनुसूचित जातियों का 60% से बड़ा हिस्सा असंगठित क्षेत्र से जुड़ा है। जबकि इनके पुरुष कामगारों का 46% हिस्सा दिहाड़ी मजदूरी से जुड़ा है जहां रोजमर्रा के काम के आधार पर मजदूरी तय की जाती है।

2. **विस्थान आधारित बहिष्करण-** सामाजिक बहिष्करण के एक भाग के रूप में विस्थापन विकास और विनाश दोनों से संबंधित है। 'जहां विकास व विस्थापन होता है वहां से गरीबी दूर भी होती है और गरीबी दस्तक भी देती है। जैसे किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी अथवा विदेशी निवेश अथवा बहुउद्देश्यीय योजनाओं की स्थापना हेतु जब भूमि अधिगृहित कर उस भूमि पर उद्योगों अथवा संयंत्रों की स्थापना की जाती है तब आस-पास के लोगों को रोजगार प्राप्त होता है। परंतु साथ ही साथ जिनकी भूमि अधिग्रहित की गई है उंन्हे विस्थापन का सामना करना पड़ता है। उचित पुनर्वास के अभाव में ऐसे विस्थापित समुदाय झुग्गियों, अत्यंत घनी आबादी वाले क्षेत्रों एवं टेंट सिटी में रहने के लिए बाध्य होते हैं(कीड़ो, 2017)'।[6] जहां स्वास्थ्य, शिक्षा एवं रोजगार आदि की पहुंच दुर्लभ होती है । ऐसी अवस्था मे विस्थापित एक नागरिक के रूप में उन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों का उपभोग नहीं कर पाते हैं जो आम नागरिक करते हैं। विस्थापितों को न केवल गरीबी, वंचना एवं हाशियाकरण का सामना करना पड़ता है अपितु उन्हें अपने मूल्यों, परंपराओं, संस्कृति, अस्मिता आदि से भी समझौता करना पड़ता है। विस्थापित जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर पुनर्वासित होते हैं तो बहुधा उंन्हे भाषा तथा भौगोलिक परिस्थितियों से उत्तपन्न कठिनाइयों व भेदभाव का सामना करना पड़ता है। परिणामस्वरूप विस्थापितों की भागीदारी आपराधिक तथा नशेड़ी प्रवृत्तियों में बढ़ती है।

'कुछ ऐसी ही परिस्थितियों का सामना विदेशी अप्रवासियों तथा शरणार्थियों को भी करना पड़ता है। मेजबान समुदाय द्वारा इनके धर्म, भाषा तथा संस्कृति को हमेशा ही संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। जिसके कारण इन्हें स्थानीय स्तर पर रोजगार प्राप्त करने तथा अपने दैनिक कृत्यों का पालन करने में कठिनाई का

सामना करना पड़ता है। परिणामतः हिंसा एवं द्वेष की उतपत्ति होती है। इस प्रकार इनकी भी भागीदारी आपराधिक कृत्यों में बढ़ने लगती है (फ्रेजर, 1998)'।[7]

विस्थापितों को निम्नलिखित भौतिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है-

(अ) इन्हें अपने मूल निवास से अत्यधिक घनी आबादी वाले क्षेत्रों में पुनर्वासित होना पड़ता है जहां मूलभूत सुविधाओं के साथ साथ सामाजिक सेवाओं का भी अभाव होता है।

(ब) बेरोजगारी अथवा अल्परोजगार का सामना करना पड़ता है।

(स) स्थानीय एवं मेजबानों की हिंसा का सामना करना पड़ता है।

(द) शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ पूर्व की भांति प्राप्त नहीं होता है।

(ह) सामाजिक पूंजी एवं अस्मिता का छरण होता है।

(ज्ञ) उच्च स्तर का गर्भधारण एवं यौन शोषण का सामना करना पड़ता है।

3. **अस्मिता आधारित बहिष्करण-** 'इस प्रकार का बहिष्करण सामाजिक, नश्लिय एवं सांस्कृतिक विभेदों के आधार पर अलगाव की प्रक्रिया का देन होता है। ऐसा बहिष्करण अत्यंत तीक्ष्ण तथा व्यवस्थित प्रकार का होता है (फ्रेजर & होनेथ, 2003)'। [8] यह कभी समाज एवं कभी राज्य की सहमति से लक्षित समूह पर आरोपित किया जाता है। धर्म आधारित राज्य तो अल्पसंख्यक संस्कृतियों को समूल नष्ट करने पर आमादा रहते हैं। हर प्रकार का दक्षिणपंथी कट्टरपंथ अन्य सांस्कृतिक समूहों के साथ भेदभाव की भावना के साथ कार्य करता है। श्रम बाजार में भी किसी विशेष नश्ल, जाति अथवा धर्म के लोगों के उच्च पदों पर काबिज होने पर ऐसी नीतियों का निर्माण होता है जिससे अन्य बहिष्करण का अनुभव करते हैं। धर्म, परंपरा एवं संस्कृति के नाम पर भी कुछ समुदायों को बहिष्करण का सामना करना पड़ता है। भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था इसका प्रमुख उदाहरण है। महिलाओं को भी धर्म, संस्कृति, परंपरा एवं मूल्यों के नाम पर बहिष्करण के विभत्स रूप को सहना पड़ता है। हाल तक विद्यमान रही सती प्रथा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह का न होना आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। भारत में भूमिपुत्र, बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक, मैदानी-पहाड़ी, जातीय-नश्लिय तथा स्थानीय एवं बाहरी पहचान के आधार पर भेदभाव तथा संघर्ष होता रहता है।

4. **लैंगिक बहिष्करण-** लिंग के आधार पर बहिरवेशन कोई नया नहीं है। यह सम्पूर्ण विश्व में कमोबेस अंतरों के साथ विद्यमान है। महिलाओं को धर्म, संस्कृति, परंपरा, मूल्य, शारीरिक छमता आदि के आधार पर सामाजिक एवं आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी से रोका जाता रहा है। 'यूनानी सभ्यता से लेकर भारतीय सभ्यता तक में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी भी नगण्य रही है। आधुनिक समय में महिलाओं को सार्वभौमिक मताधिकार पचास के दशक और उसके आसपास प्राप्त हुआ है। इसी से स्पष्ट है कि महिलाओं

को एक नागरिक के सभी अधिकारों से वंचित रखा गया है (श्रीवास्तव, 2023)'[9]। "औरत का कोई देश नहीं" जैसे साहित्य इस बात को प्रमाणित करते हैं। भारतीय समाज में महिलाओं को एक साथ विभिन्न प्रकार के वंचनाओं व वर्जनाओं को सहना पड़ता है। कभी जाती के आधार पर, कभी त्वचा के रंग के आधार पर, कभी आर्थिक असमानता के आधार पर और कभी स्वयं महिला होने के नाम पर। कभी कभी ये सारे भेदभाव एकसाथ लागू हो जाते हैं। सार्वजनिक उद्यमों में महिलाओं की भागीदारी नगण्य है। इसका कारण उच्च पदों पर काबिज पुरूष समाज है जो अपने हितों के अनुरूप नियम बनाता है। जिसके कारण महिलाओं को उन्हीं नियमों के दायरे में काम करते हुए भेदभाव का सामना करना पड़ता है। अतः औरत को समानता उसके जैविक विभेदों को स्वीकार करते हुए देनी होगी मातृ अवकाश, चाइल्ड केयर, समान कार्य के लिए समान वेतन जैसे मुद्दे ऐसे बहिष्करण को दूर करने में उपयोगी सिद्ध होंगे। महिलाओं की पुरुषों की तुलना में साक्षरता दर में कमी, खराब स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण मातृ मृत्यु, सामाजिक कुरीतियां, देह व्यापार आदि बहिष्करण के प्रकार हैं।

5. **नश्ल आधारित बहिष्करण-** सम्पूर्ण विश्व भर में नश्लिय भेदभाव किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। हाल ही में 25 मई, 2020 को अमेरिका में एक स्वेत पुलिसकर्मी डेरेक चाउविन के द्वारा अस्वेत नागरिक जॉर्ज फ्लायोड का गला दबाकर हत्या करने का मामला सामने आया है। जिसके कारण अमेरिका में "आई कान्ट ब्रीथ" और "ब्लैक लाइव्स मैटर" जैसा आंदोलन चला। भारत में भी पुरवोत्तर के नागरिकों को आए दिन हिंसा एवं चिंकी, नेपाली, चीनी जैसे उद्बोधनों से दो चार होना पड़ता है। इस प्रकार का नश्लिय बहिष्करण असमानता एवं गरीबी को जन्म देता है। इंग्लैंड जैसे देश में भी स्वेत और अश्वेत के मध्य संघर्ष एवं दंगे भेदभाव के ही परिणाम हैं। कोविड-19 वायरस के फैलने के कारण यूरोप व अमेरिका में चीनी लोगों के साथ भेदभाव नश्लिय बहिष्करण का ही उदाहरण है। लैटिन अमेरिका भी एफ्रो-लैटिन और मूलनिवासीय संघर्षों से दो चार होता रहता है।
6. **धर्म आधारित बहिष्करण-** धर्म आधारित बहिर्वेशन अत्यंत घातक सिद्ध होता है। भारत, अमेरिका, ब्रिटेन आदि धर्मनिरपेक्ष देशों में सांस्थानिक स्तर पर धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता। परंतु सामाजिक संरचनाओं के माध्यम से बहुसंख्यक समाज द्वारा अल्पसंख्यकों को विभिन्न प्रकार से दबाया जाता है। जिसकी परिणति कालांतर में दंगे एवं हिंसा के रूप में होती है। धर्म राज्यों जैसे; इस्लामिक देशों में अन्य मतावलंबियों को भारी असमानता का सामना करना पड़ता है।

धर्म आधारित बहिष्करण मुख्यतः तीन प्रकार से आता है। पहला, उपासना अथवा धार्मिक व्यवहार के अधिकार के प्रोयग पर रोक अथवा बहुसंख्यकों के समकक्ष या लगभग समकक्ष अधिकारों के प्रयोग से वंचित करना। दूसरा, कानूनी, राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकारों के समान प्रयोग से किसी विशेष धर्म के लोगों को वंचित करना। तीसरा, किसी धर्म विशेष के भीतर ही किन्ही समुदाय विशेष के लोगों को धार्मिक कृत्यों अथवा धार्मिक स्थलों में प्रवेश से वंचित करना। जैसे भारतीय हिन्दू धर्म मे किन्ही विशेष जातीय समुदायों को मंदिरों में प्रवेश से वंचित करना। अथवा महिलाओं को कुछ विशेष पूजा स्थलों पर प्रवेश से

रोकना तथा उनके मासिक धर्म को अपवित्र बताकर उंन्हे धार्मिक कर्मों से वंचित करना अथवा उंन्हे देवदासी जैसी कुप्रथा का शिकार बनाना।

7. **शारीरिक अक्षमता -** शारीरिक रूप से विकलांग लोग सामान्य लोगों की तुलना में प्रायः रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक सेवाओं का लाभ उठा पाने में अक्षम होते हैं। उनके समावेशन में उनकी शारीरिक अक्षमता बहुत प्रकार से बाधाएं उत्तपन्न करती है जैसे; बहूत सारे भवनों में न जा पाना, यातायात सुविधाओं का लाभ सामान्य जनों की भांति न उठा पाना। कुछ बाधाएं सांस्थानिक होती हैं जैसे; कानून निर्माण के समय उन्हें नजरअंदाज किया जाना। कुछ भेदभाव समाज में मानव व्यवहार से संबंधित होते हैं जैसे; शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को कलंक के रूप में देखना अथवा उनके प्रति पूर्वाग्रह रखना। सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों के किसी भी भाग में विकलांगता को स्थान नहीं दिया गया है। ऐसा तब है जब सम्पूर्ण विश्व भर में लगभग 1 बिलियन से अधिक लोग किसी न किसी प्रकार के शारीरिक अपंगता के शिकार हैं।
8. **बृद्धावस्था एवं बीमारीजन्य बहिष्करण** - अन्य बहिष्करणों की भांति बृद्ध जनों को भी विभिन्न प्रकार के बहिर्वेशन का सामना करना पड़ता है। इन्हें अलगाव, आवश्यक उपभोग सामग्री की अनुपलब्धता, शारिरिक दौर्बल्य आदि भेदभावपूर्ण व्यवहारों का सामना करना पड़ता है। औद्योगिक क्षेत्रों में नित नई प्रयोग होती तकनीकी के प्रयोग के योग्य इन्हें नहीं समझा जाता है। जिसके कारण इन्हें आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। इन्हें वृद्धाश्रमों में भेजकर पारिवारिक सुख से वंचित किया जाता है जो अंततः एंजाइटी एवं मानसिक व्याधि के रूप में सामने आता है। वृद्धावस्था से समन्धित पूर्वाग्रहों के कारण पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र के निर्णय निर्माण समन्धित मामलों में इनकी भूमिका सीमित हो जाती है। स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक स्थलों पर भी इनकी आयु के कारण भेदभाव किया जाता है। यह भी एक कड़वी सच्चाई है कि विश्व के सम्पूर्ण गरीबों में वृद्धों का अनुपात तेजी से बढ़ रहा है।

हमारे समाज में बहुतेरे ऐसे लोग भी हैं जो लाइलाज अथवा भयंकर बीमारी का सामना करते हैं। लोगों के बीच उनके बारे में विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह व्याप्त होते हैं। इन पूर्वाग्रहों के कारण ऐसे लोगों को सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में भागीदारी से वंचना का सामना करना पड़ता है। जैसे कुष्ठ रोगियों के साथ अनुचित व्यवहार का किया जाना। इस संबंध में सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण एचआईवी/एड्स संक्रमितों के साथ सम्पूर्ण विश्व भर में होने वाला भेदभाव है। लोगों के बीच ऐसी धारणा का होना की एचआईवी संक्रमित व्यक्ति के साथ बैठने, खाने अथवा छूने से एड्स फैल सकता है, इन्हें सामाजिक रूप से बहिस्कृत कर देता है। वर्तमान में कोविड-19 के मरीजों के साथ भी सौतेला व्यवहार प्रारम्भ हो गया है। ऐसे मरीजों के ठीक होने के बाद भी लोग उनसे दूरी बना रहे हैं। अतः स्पष्ट है कि ऐसे सामाजिक बहिष्करण महामारी अथवा बड़ी बीमारी से पीड़ित लोगों को सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अत्यंत कमजोर कर देते हैं।

9. **भौगोलिक स्थित जन्य बहिष्करण-** 'स्थानीय अवस्था के कारण बहिष्करण के मुख्यतः पांच रूप हैं। प्रथम; शहरी एवं ग्रामीण स्थिति के कारण सुविधाओं की उपलब्धता में सांस्थानिक स्तर पर भेदभाव तथा

द्वितीय; भौगोलिक स्थिति के कारण क्षेत्र आधारित बहिर्वेशन। जैसे पहाड़ी एवं मैदानी भागों की भौगोलिक अवस्था के कारण भेदभाव। तृतीय; किसी औद्योगिक, सांस्कृतिक, सांस्थानिक अथवा धार्मिक केंद्रों से दूरवर्ती क्षेत्रों के लोगों द्वारा इनमें भागीदारी से वंचित अथवा लगभग वंचित होना। चतुर्थ; ऐसे स्थान जिन्हें शहर से दूरी अथवा उनके स्थानीय परिवेश जैसे, नशे एवं देह व्यापार, आपराधिक प्रवृत्ति, गंदगी अथवा हिंसा के कारण अलग- थलग रखा जाता है। ऐसे बहिर्वेशन के कारण ही झुग्गियों का निर्माण होता है। पंचम; ऐसे धार्मिक अथवा नश्लिय अल्पसंख्यकों की बस्तियों का बसना जो भेदभाव के शिकार रहे हों। ऐसे स्थान प्रत्यक्ष तथा सर्वत्र हिंसा के केंद्र बनते रहते हैं। विस्थापितों की बस्तियां भी आए दिन हिंसा एवं अलगाव का सामना करती रहती हैं (सर्नेिया, 1997)'।[10]

अतः स्पष्ट है कि स्थानीय अथवा भौगोलिक स्थिति के कारण बहिष्करण का सामना कर रहे लोग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक लाभों से वंचित रह जाते हैं। ऐसी अवस्था में जीवन यापन कर रहे समुदाय प्रायः भेदभावपूर्ण जीवन को अंगीकार कर चुके होते हैं। उंन्हे नवीन तकनीकी, मानवाधिकार, मानव कल्याण के लिए आवश्यक न्यूनतम उपभोग के संसाधनों से भी वंचित रखा जाता है। यह सभी कार्य नीति नियंताओं की गलत नीतियों एवं जवाबदेही तथा जिम्मेदारी के अभाव के कारण होता है। इस प्रकार से बहिस्कृत लोगों को सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों अथवा झुग्गी बस्तियों में कंसन्ट्रेट कर दिया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के द्वारा लगभग 50 देशों में ऐसे बहिष्करणों का सामना कर रहे लोगों की स्थिति जानने संबंधी एक प्रोजेक्ट के अनुसार शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के बीच सुविधाओं के उपभोग में भारी अंतर है। यही स्थिति भौगोलिक रूप से दूरवर्ती क्षेत्रों के साथ भी है। मैदानी भागों एवं तटीय भागों में उद्योगों के विकास ने अन्य क्षेत्रों के लोगों को अपने मूल निवास से पलायन के लिए बाध्य किया है।

10. **दीर्घकालिक बेरोजगारी जनित बहिष्करण-** 'सामाजिक बहिर्वेशन का यह पहलू अपने आप में व्यापक मात्रा में बहिर्वेशन की विभिन्न प्रक्रियाओं को जन्म देता है। न केवल एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका बल्कि ऑस्ट्रेलिया एवं यूरोपीय देशों में भी यह अत्यंत विकराल रूप में विद्यमान है (थोराट, 2007)'।[11] इटली, फ्रांस, जर्मनी और स्पेन आदि देशों में कुल वर्क फोर्स का लगभग 10 से 12% हिस्सा बेरोजगार है। इस सतत बेरोजगारी के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं जो सामाजिक बहिष्कार के इस रूप एवं इसके अन्योन्य संबंधों को समझने में सहायक होंगे –

(a) सतत बेरोजगारी के कारण उत्पादन शक्ति का बहुत बड़ा हिस्सा बेकार हो जाता है तथा राष्ट्र की निर्यात क्षमता भी घटती है।

(b) बहुत दिनों तक रोजगार न मिलने के कारण लोग अपने हुनर को भूलने लगते हैं। जिसके कारण उनका स्वयं पर से विश्वास कमजोर होने लगता है तथा आत्म नियंत्रण की कमी दृष्टिगोचर होने लगती है।

(c) बेरोजगारी जनित गरीबी के कारण लोग अपनी स्वतंत्रता का पूर्ण उपयोग नहीं कर पाते हैं। अपने अंदर आत्मविश्वास की कमी के कारण बेरोजगार अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर पाते हैं तथा सार्वजनिक गतिविधियों में भाग लेना इनके लिए समस्या जनक हो जाता है।

(d) सतत बेरोजगारी के कारण मानसिक व्याधियां भी उत्पन्न होना शुरू हो जाती हैं। चिंता एवं मानसिक कष्टों के कारण ऐसे बहिष्करण के शिकार लोगों में आत्महत्या की प्रवृत्ति जन्म लेती है। उनका आत्मविश्वास खत्म होता है तथा नैतिक पतन भी प्रारंभ हो जाता है।

(e) बेरोजगारी जनित बहिष्करण के कारण लोगों में ऐसी भावना जन्म लेती है जिससे लोग सामाजिक ढांचे को ही संपूर्ण दोषों का कारण मान लेते हैं। परिणाम स्वरूप सामाजिक संबंध ढीले पड़ने लगते हैं। इसके शिकार लोग खराब स्वास्थ्य का भी सामना करते हैं।

(f) इसके कारण भुक्तभोगी व्यक्ति का पारिवारिक जीवन प्रभावित होता है। आत्म संयम एवं आत्मविश्वास की कमी के कारण निर्णयन क्षमता समाप्त होने लगती है।

(g) सतत बेरोजगारी नस्लीय हिंसा को भी जन्म देती है। इसके भुक्तभोगी बहुधा प्रवासी एवं अल्पसंख्यक समुदाय के लोग ही होते हैं। अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया एवं यूरोप आदि देशों में काम कर रहे प्रवासियों को सतत बेरोजगारी के प्रभाव के कारण स्थानीय लोगों के हिंसा का सामना करना पड़ता है तथा समय-समय पर वहां की सरकारों द्वारा भी वीजा नियमों को कड़ा कर कई प्रतिबंध आरोपित किए जाते हैं।

(h) ऐसे बहिर्वेशन का प्रभाव महिलाओं पर सर्वाधिक पड़ता है। क्योंकि इनकी पहले से ही सार्वजनिक क्षेत्रों में भागीदारी कम है। ऐसे में महिलाओं को बहुत सारे सामाजिक एवं आर्थिक भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

(i) सतत बेरोजगारी के कारण सामाजिक मूल्य कमजोर होते हैं।

(j) भारत जैसे देश में जाति जनित सतत बेरोजगारी गरीबी एवं हिंसा दोनों को एक साथ जन्म देती है।

11. **लैंगिक झुकाव और सामाजिक बहिष्करण-** 'दुनिया के लगभग सभी देशों में समलैंगिकता को अपराध की दृष्टि से देखा जाता है। लैसबियन, गे, बाईसेक्युल एवं ट्रांसजेंडर के साथ समाज में भेदभाव व्यापक मात्रा में विद्यमान है। इन्हें आज भी समाज में कलंक की दृष्टि से देखा जाता है। परिणाम स्वरूप ऐसे लोग न केवल सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों से बल्कि आर्थिक गतिविधियों से भी लगभग लगभग पूर्णरूपेण बहिष्कृत हो जाते हैं (टेलर, 1994)'।[12] परंतु वर्तमान समय में तमाम स्वयंसेवी संगठनों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं के द्वारा इनके समस्याओं को उठाया जा रहा है। बहुत सारे देशों में समलैंगिकता के लिए कानून भी बनाए जा चुके हैं।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि 'सामाजिक बहिष्करण एक ऐसी प्रक्रिया को जन्म देता है जिसमें व्यक्ति, समुदाय, अथवा समाज का कोई हिस्सा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक गतिविधियों में पूर्ण अथवा आंशिक रूप से भागीदारी करने से वंचित रह जाता है। यह बहिष्करण धर्म, भाषा, शारीरिक अक्षमता, आयु, सरकारी नीतियों, आर्थिक नीतियों आदि के माध्यम से व्यक्ति एवं समाज को प्रभावित करता है'। विश्व के लगभग सभी देशों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक ताना-बाना अलग-अलग है। परिणाम स्वरूप हर

देश में सामाजिक बहिष्करणों का रूप भी अलग-अलग है। परंतु बहुत सारे मुद्दों पर इसका एकीकृत रूप भी देखने को मिलता है। विश्व भर में लगभग सभी देशों में सामाजिक बहिष्कार के इस पहलू को ध्यान में रखकर नीतियों का निर्माण किया जा रहा है। परंतु सामाजिक बहिर्वेशन का यह ताना-बाना इतना मजबूत है कि यहां एक की हानि दूसरे के लाभ में परिवर्तित हो जाती है। अतः नीति नियंताओं एवं समाज के संचालकों को यह ध्यान रखना होगा कि पूंजीपतियों, मध्यम वर्ग तथा गरीब के बीच की खाई न्यूनतम की जाए।

संदर्भ

1. Daly, Mary, & Silver, Hilary. (2008). *Social exclusion and social capital: A comparison and critique*. Springer.
2. GSDRC. (2015). *Social exclusion*. https://www.gsdrc.org
3. Kabeer, Naila. (2005). *Social exclusion: Concepts, findings and implications for MDG*s.
4. Louis, Prakash. (2015). *Social exclusion: A conceptual and theoretical framework*
5. Sen, Amartya. (2000). *Social exclusion: Concept, application and scrutiny*. Asian Development Bank (ADB).
6. किड़ो, वासवी. (2017). *भारत में विस्थापन की अवधारणा और इतिहास*. नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन.
7. Fraser, Nancy, & Honneth, Axel. (2003). *Redistribution or recognition*?. Verso, London/New York, www.econstor.eu / WZB
8. Fraser, Nancy. (1998). Social justice in the age of identity politics: Redistribution, recognition, participation. WZB.
9. श्रीवास्तव, गरिमा. (2023). अश्वेत स्त्री – आत्मकथाएं: जेंडर और समाज के आईने में. प्रतिमान.
10. Cernea, Michael M. (1997). *The risk and reconstruction model for resettling displaced people*. The World Bank, Washington D.C., USA.
11. Thorat, Sukhadeo. (2007). *Economic exclusion and poverty: Indian experience of remedies against exclusion.* Asian Development Bank (ADB) & International Food Policy Research Institute.
12. Taylor, Charles. (1994). *The politics of recognition.*

सामाजिक समरसता हेतु व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक प्रयास

कौशल किशोर*

kaushal.kishor17291@gmail.com

सारांश :

सामाजिक समरसता एक ऐसा आदर्श है जो समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों और व्यक्तियों के बीच आपसी समझ, सहयोग और एकता को बढ़ावा देता है। यह विविधता में एकता का प्रतीक है, जहाँ मतभेदों को स्वीकार करते हुए भी सामंजस्य स्थापित किया जाता है। आज के युग में, जब सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असमानताएँ बढ़ रही हैं, सामाजिक समरसता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक प्रबल हो गई है। यह न केवल व्यक्तिगत स्तर पर, बल्कि संगठनात्मक प्रयासों के माध्यम से भी साकार हो सकती है। व्यक्तिगत प्रयासों में संवेदनशीलता, सहानुभूति और दूसरों के प्रति सम्मान जैसे गुण शामिल हैं, जो छोटे-छोटे कदमों से समाज में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। वहीं, संगठनात्मक स्तर पर सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए जागरूकता अभियान, समावेशी नीतियाँ और सामुदायिक कार्यक्रम प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं। यह लेख व्यक्तिगत और संगठनात्मक दोनों पहलुओं पर प्रकाश डालता है, जो सामाजिक समरसता को मजबूत करने में योगदान दे सकते हैं। इसके माध्यम से हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे छोटे प्रयास बड़े परिवर्तनों का आधार बन सकते हैं और समाज को एकजुट, शांतिपूर्ण और समृद्ध बनाने में मदद कर सकते हैं। सामाजिक समरसता केवल एक विचार नहीं, बल्कि एक सतत छोटे प्रयास बड़े परिवर्तनों का आधार बन सकते हैं और समाज को एकजुट, शांतिपूर्ण और समृद्ध बनाने में मदद कर सकते हैं। सामाजिक समरसता केवल एक विचार नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है जो हम सभी की भागीदारी माँगती है।

मुख्य शब्द :

सामाजिक समरसता, सहिष्णुता, समानता, समावेशिता, संवाद एवं सहयोग, संगठन

सामाजिक समरसता का विचार भारत के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में गहराई से समाया हुआ है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और परंपराओं का संगम रहा है। प्राचीन काल में, अशोक जैसे सम्राटों ने बौद्ध धर्म के माध्यम से अहिंसा और समता के सिद्धांतों को बढ़ावा देकर सामाजिक समरसता की नींव रखी। उनके शिलालेखों में सभी संप्रदायों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता की बात कही गई है। मध्यकाल में सूफी संतों जैसे

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा**

कबीर, नानक और चिश्ती ने अपनी शिक्षाओं से हिंदू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहित किया, जो व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक समरसता का उदाहरण बन गया। भक्ति आंदोलन ने भी जातिगत भेदभाव को चुनौती दी और समाज को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया।

आधुनिक काल में, महात्मा गांधी ने अहिंसा और सर्वधर्म समभाव के सिद्धांतों के जरिए सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया। उन्होंने व्यक्तिगत स्तर पर लोगों से भेदभाव त्यागने और संगठनात्मक रूप से स्वतंत्रता संग्राम में सभी वर्गों को जोड़ने का आह्वान किया। डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने संविधान के माध्यम से समानता और न्याय की स्थापना कर संगठनात्मक प्रयासों को मजबूत किया। स्वतंत्रता संग्राम में सभी वर्गों को जोड़ने का आह्वान किया। डॉ. बी.आर. आंबेडकर ने संविधान के माध्यम से समानता और न्याय की स्थापना कर संगठनात्मक प्रयासों को मजबूत किया। स्वतंत्रता के बाद, सरकार और गैर-सरकारी संगठनों ने शिक्षा, रोजगार और सामुदायिक विकास के जरिए समरसता को प्रोत्साहित किया।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखें तो व्यक्तिगत प्रयास, जैसे संतों की शिक्षाएँ, और संगठनात्मक प्रयास, जैसे नीतिगत सुधार, दोनों ने मिलकर समाज में एकता और सहयोग की भावना को बल दिया। यह परंपरा आज भी प्रासंगिक है, जहाँ व्यक्तिगत संवेदनशीलता और संगठनात्मक पहल मिलकर सामाजिक समरसता को सुदृढ़ कर सकती हैं।

सामाजिक समरसता हेतु व्यक्तिगत प्रयास

सामाजिक समरसता का अर्थ समाज में विभिन्न वर्गों, समुदायों और संस्कृतियों के बीच सद्भाव और समानता स्थापित करना है। यह केवल संगठनों और सरकारी नीतियों पर निर्भर नहीं करता, बल्कि व्यक्तिगत प्रयास भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने स्तर पर सहयोग, सहिष्णुता और समावेशिता को बढ़ावा दे, तो समाज में समरसता स्वतः ही विकसित हो सकती है।

व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक समरसता बढ़ाने के लिए सबसे पहले पूर्वाग्रहों और भेदभाव से मुक्त होना आवश्यक है। जाति, धर्म, लिंग, आर्थिक स्थिति या क्षेत्र के आधार पर भेदभाव समाज में असमानता को जन्म देता है। यदि व्यक्ति दूसरों को समान सम्मान और अवसर देने की मानसिकता अपनाए, तो सामाजिक समरसता को मजबूती मिलेगी (Ambedkar, 1936)।

शिक्षा और संवाद भी सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के प्रभावी साधन हैं। जब व्यक्ति खुले विचारों से विभिन्न समुदायों के लोगों के साथ संवाद करता है और उनके दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करता है, तो पारस्परिक सम्मान विकसित होता है (Guha, 2008)। इसके अतिरिक्त, सामाजिक कार्यों में भागीदारी, जरूरतमंदों की सहायता और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में योगदान देना भी सामाजिक समरसता को मजबूत करता है (Hurst, 2014)।

व्यक्तिगत प्रयासों से ही समाज में समरसता और एकता को बढ़ावा दिया जा सकता है। जब प्रत्येक व्यक्ति समानता, करुणा और सद्भाव को अपने आचरण में अपनाएगा, तब ही एक समरस और विकसित समाज की स्थापना संभव होगी।

सामाजिक समरसता हेतु संगठनात्मक प्रयास

सामाजिक समरसता किसी भी समाज के विकास और स्थिरता के लिए एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह विभिन्न वर्गों, समुदायों और संस्कृतियों के बीच आपसी सहयोग, सम्मान और समानता को बढ़ावा देती है। संगठनात्मक प्रयासों की भूमिका इसमें विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि वे बड़े पैमाने पर प्रभाव डाल सकते हैं और समाज में संरचनात्मक परिवर्तन ला सकते हैं। सरकारी नीतियों, गैर-सरकारी संगठनों (NGOs), शैक्षिक संस्थानों और कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) जैसे संगठनात्मक प्रयासों के माध्यम से सामाजिक समरसता को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

1. सरकारी संगठनात्मक प्रयास : सरकार द्वारा सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए कई नीतियाँ और योजनाएँ चलाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, भारत सरकार ने शिक्षा और रोजगार में आरक्षण नीति लागू की है, जिससे ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों को समान अवसर मिल सकें (Ambedkar, 1936)। इसके अलावा, 'सर्व शिक्षा अभियान' और 'प्रधानमंत्री जन-धन योजना' जैसी पहलें समाज के विभिन्न वर्गों के लिए समान अवसर सुनिश्चित करती हैं (Sengupta, 2007)।

2. गैर-सरकारी संगठनों (NGOs) की भूमिका : गैर-सरकारी संगठन सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे जागरूकता अभियान, सामुदायिक विकास कार्यक्रम और सामाजिक समावेशन की पहलें चलाते हैं। उदाहरण के लिए, 'सुलभ इंटरनेशनल' संगठन ने स्वच्छता और सामाजिक समानता के लिए कई प्रभावी कार्यक्रम चलाए हैं (Béteille, 1971)। इसी तरह, 'अक्षय पात्र' फाउंडेशन शिक्षा में समानता लाने के लिए छात्रों को मुफ्त भोजन उपलब्ध कराता है।

3. शैक्षिक संस्थानों का योगदान : शिक्षा सामाजिक समरसता का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विविध संस्कृतियों और समुदायों के छात्रों को समान अवसर देने से भेदभाव को कम किया जा सकता है। पाठ्यक्रमों में सहिष्णुता, समानता और सामाजिक न्याय जैसे विषयों को शामिल करना आवश्यक है (Guha, 2008)। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न विश्वविद्यालयों में 'सामाजिक समरसता एवं समावेशन केंद्र' स्थापित किए गए हैं जो इस दिशा में कार्यरत हैं।

4. कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) और व्यवसायिक संगठन : बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और स्थानीय व्यवसाय भी सामाजिक समरसता को बढ़ाने में योगदान देते हैं। वे विविधता (diversity) और समावेशन (inclusion) की नीतियाँ अपनाते हैं, जिससे कार्यस्थल पर लैंगिक, जातीय और सांस्कृतिक विविधता को प्रोत्साहन मिलता है (Greenwald, 2008)। उदाहरण के लिए, टाटा समूह, विप्रो और इंफोसिस

जैसी कंपनियाँ अपने CSR कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षा, स्वास्थ्य और महिला सशक्तिकरण में योगदान देती हैं।

5. मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्म की भूमिका : मीडिया और डिजिटल प्लेटफार्म सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सकारात्मक और संतुलित रिपोर्टिंग, विभिन्न सांस्कृतिक समूहों की कहानियों को प्रदर्शित करना और डिजिटल अभियानों के माध्यम से एकजुटता को बढ़ावा देना इसके कुछ उदाहरण हैं (Hurst, 2014)।

सामाजिक समरसता को बनाए रखने और बढ़ाने के लिए संगठनात्मक प्रयास अनिवार्य हैं। सरकार, गैर-सरकारी संगठन, शैक्षिक संस्थान, कॉर्पोरेट जगत और मीडिया मिलकर समाज में एकता और सहयोग की भावना को बढ़ा सकते हैं। यह केवल नीतियों और योजनाओं तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे समाज के हर स्तर पर व्यवहार में उतारने की आवश्यकता है। जब संगठनात्मक प्रयास व्यक्तिगत स्तर पर जागरूकता और सामाजिक सहयोग से जुड़ते हैं, तो वे अधिक प्रभावी और स्थायी परिवर्तन ला सकते हैं।

चुनौतियाँ :

वैसे तो सामाजिक समरसता समाज में शांति, सौहार्द और समन्वय बनाए रखने की प्रक्रिया है किंतु, सामाजिक समरसता को बनाए रखने में कई चुनौतियाँ आती हैं, जिनका प्रभावी समाधान आवश्यक है। जातिगत और वर्गीय भेदभाव भारतीय समाज में एक बड़ी समस्या रही है, जो सामाजिक विभाजन को गहरा करती है (Ambedkar, 1936)। इसे समाप्त करने के लिए प्रभावी कानूनों को लागू करने के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता बढ़ाने और शिक्षा प्रणाली को समावेशी बनाने की जरूरत है। इसी प्रकार, धार्मिक असहिष्णुता भी सामाजिक समरसता में बाधा उत्पन्न करती है (Guha, 2008)। विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच संवाद, सहिष्णुता और आपसी सम्मान को बढ़ावा देकर इस चुनौती का समाधान किया जा सकता है। मीडिया और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों को भी जिम्मेदारी से कार्य करना चाहिए ताकि सांप्रदायिक तनाव न बढ़े। आर्थिक असमानता भी समाज में समरसता को बाधित करने वाला एक बड़ा कारक है, क्योंकि जब अमीर और गरीब के बीच की खाई गहरी होती जाती है, तो इससे असंतोष बढ़ता है (Hurst, 2014)। इसके समाधान के लिए समावेशी आर्थिक नीतियाँ, रोजगार सृजन और शिक्षा तथा कौशल विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता देना आवश्यक है। लिंग आधारित असमानता भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जिससे महिलाओं और अन्य वंचित लैंगिक समूहों को समान अवसर नहीं मिलते (Greenwald, 2008)। इसे दूर करने के लिए लैंगिक समानता को बढ़ावा देने वाले कानूनों और नीतियों को प्रभावी रूप से लागू करने के साथ-साथ समाज में जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है। राजनीतिक ध्रुवीकरण भी सामाजिक समरसता को प्रभावित करता है, क्योंकि जब समाज विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं में बंट जाता है, तो इससे आपसी मतभेद और टकराव बढ़ते हैं। इसे हल करने के लिए नागरिकों को जागरूक किया जाना चाहिए कि वे नफरत और विभाजन की राजनीति से बचें तथा लोकतांत्रिक मूल्यों को अपनाएँ। शिक्षा प्रणाली को इस तरह विकसित किया जाना चाहिए, जिससे

सामाजिक एकता, सद्भाव और लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रोत्साहित किया जा सके। सामाजिक संस्थाओं, शैक्षिक संगठनों, धार्मिक समुदायों और सरकार को मिलकर सामाजिक समरसता की दिशा में ठोस प्रयास करने चाहिए। इसके लिए अंतरजातीय और अंतरधार्मिक संवाद, समावेशी आर्थिक नीतियाँ, लैंगिक समानता और राजनीतिक संतुलन को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। जब समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार और अवसर मिलेंगे, तभी वास्तविक सामाजिक समरसता स्थापित की जा सकेगी। इसलिए, सामाजिक समरसता को एक आदर्श नहीं, बल्कि एक व्यवहारिक लक्ष्य के रूप में अपनाना होगा, जिससे एक न्यायसंगत, शांतिपूर्ण और समावेशी समाज का निर्माण संभव हो सके।

सामाजिक समरसता समाज के लिए एक आधारभूत आवश्यकता है, जो व्यक्तिगत और संगठनात्मक प्रयासों के समन्वय से ही संभव है। व्यक्तिगत स्तर पर सहानुभूति, सम्मान और जागरूकता, तो संगठनात्मक स्तर पर समावेशी नीतियाँ और सामुदायिक कार्यक्रम समाज को एकजुट करते हैं। ये प्रयास न केवल वर्तमान में शांति और सहयोग को बढ़ाते हैं, बल्कि भविष्य के लिए भी एक मजबूत नींव तैयार करते हैं।

भविष्य की दिशा में, हमें तकनीक और शिक्षा का उपयोग कर जागरूकता फैलानी होगी। संगठनों को युवाओं को प्रेरित करने और विविधता को प्रोत्साहित करने पर ध्यान देना चाहिए। व्यक्तियों को अपने दैनिक जीवन में समरसता के मूल्यों को अपनाना होगा, ताकि यह एक संस्कृति बन सके। चुनौतियाँ होंगी, पर निरंतर प्रयास और सहयोग से हम एक ऐसे समाज की ओर बढ़ सकते हैं, जहाँ मतभेदों के बावजूद एकता और शांति कायम रहे। सामाजिक समरसता केवल लक्ष्य नहीं, बल्कि एक सतत यात्रा है।

निष्कर्ष

सामाजिक समरसता किसी भी समाज की स्थिरता, शांति और प्रगति के लिए आवश्यक तत्व है, जिसे व्यक्तिगत और संगठनात्मक प्रयासों के समन्वय से ही साकार किया जा सकता है। व्यक्तिगत स्तर पर, सहिष्णुता, सहानुभूति, पारस्परिक सम्मान और जागरूकता जैसे गुण अपनाकर सामाजिक समरसता को बढ़ावा दिया जा सकता है। वहीं, संगठनात्मक स्तर पर समावेशी नीतियाँ, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, शिक्षा एवं रोजगार में समान अवसर, तथा सामाजिक जागरूकता अभियानों के माध्यम से इसे और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

इतिहास गवाह है कि भारत में सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए कई महापुरुषों और विचारकों ने अपने स्तर पर प्रयास किए। प्राचीन काल में सम्राट अशोक ने अपने शिलालेखों में सभी धर्मों के प्रति सम्मान और सहिष्णुता का संदेश दिया, मध्यकाल में सूफी संतों और भक्ति आंदोलन के संतों ने जाति-पाति और धार्मिक भेदभाव को चुनौती दी, और आधुनिक काल में महात्मा गांधी तथा डॉ. बी. आर. आंबेडकर ने सामाजिक समरसता को संविधान और अहिंसक आंदोलनों के माध्यम से सुदृढ़ किया।

हालांकि, सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे पूर्वाग्रह, सामाजिक असमानता, सांस्कृतिक मतभेद, तथा संगठनात्मक नीतियों का अपर्याप्त कार्यान्वयन। इन चुनौतियों का समाधान शिक्षा और जागरूकता के प्रसार, सहिष्णुता को बढ़ावा देने वाले कार्यक्रमों, नीति-निर्माण में समावेशिता, और संवाद तथा सहयोग की संस्कृति को अपनाने से संभव हो सकता है।

अतः, सामाजिक समरसता केवल एक विचार नहीं, बल्कि एक सतत प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत और संगठनात्मक दोनों स्तरों पर निरंतर प्रयास की माँग करती है। यदि हर व्यक्ति अपने स्तर पर संवेदनशीलता और सहिष्णुता को अपनाए और संगठनों द्वारा समावेशी प्रयास किए जाएँ, तो समाज में वास्तविक समरसता स्थापित की जा सकती है, जिससे शांति, स्थिरता और विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

संदर्भ :-

Ambedkar, B. R. (1936). *Annihilation of Caste*. Navayana Publishing.

Béteille, A. (1971). *Caste, Class, and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village*. University of California Press.

Fischer, L. (1954). *Gandhi: His Life and Message for the World*. Signet Key.

Greenwald, H. P. (2008). *Organizations: Management Without Control*. SAGE Publications.

Guha, R. (2008). India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. Picador.

Hurst, A. (2014). *The Purpose Economy: How Your Desire for Impact, Personal Growth and Community Is Changing the World*. Elevate Publishing.

Modi, N. D. (2020). *Social Harmony and Developed India*. Prabhat Prakashan Pvt Ltd.

Nehru, J. (1960). *The Discovery of India.* Meridian Books / Thames and Hudson.

Richter, R. (2017). *Social Innovation: Solutions for a Sustainable Future*. Springer.

Rousseau, J.-J. (1762). *The Social Contract*. Penguin Classics.

Sengupta, A. K. (2007). *Social Cohesion and Development*. SAGE Publications.

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका

डॉ. जगदीश चन्द्र खटीक*

drjagdish17@gmail.com

भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल एक राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि यह एक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का भी प्रतीक था। इस संघर्ष में भारतीय समाज के हर वर्ग ने अपनी भूमिका निभाई, जिनमें महिलाएँ भी प्रमुख रूप से शामिल थीं। परंपरागत रूप से भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका घरेलू जीवन तक सीमित मानी जाती थी, लेकिन स्वतंत्रता संग्राम ने इस धारणा को तोड़ते हुए उन्हें एक नई पहचान दी। महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में कई रूपों में भाग लिया—कुछ ने शांतिपूर्ण आंदोलनों में भाग लेकर जन-जागरूकता फैलाई, तो कुछ ने क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय होकर ब्रिटिश शासन को चुनौती दी। प्रारंभ में महिलाएँ प्रत्यक्ष रूप से आंदोलनों में कम सक्रिय थीं, लेकिन 19वीं और 20वीं शताब्दी में उनके योगदान ने स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा दी। महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाओं की भागीदारी को विशेष प्रोत्साहन मिला, जिससे वे समाज सुधार आंदोलनों से लेकर राजनीतिक संघर्ष तक, हर मोर्चे पर सक्रिय हुईं। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1947 में भारत की स्वतंत्रता तक, महिलाओं ने कई ऐतिहासिक घटनाओं में अहम भूमिका निभाई। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल जैसी वीरांगनाओं ने अंग्रेजों के खिलाफ शस्त्र उठाए, जबकि सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली और विजयलक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं ने अहिंसक आंदोलनों के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम को बल प्रदान किया। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं ने अनेक प्रकार से योगदान दिया। उन्होंने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया, सत्याग्रह आंदोलनों में भाग लिया, जेल यात्राएँ कीं, क्रांतिकारी संगठनों से जुड़ीं और कई बार भूमिगत रहकर अंग्रेजों के खिलाफ रणनीति बनाई। कुछ महिलाओं ने समाज सुधार के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम को सशक्त बनाया, तो कुछ ने पत्रकारिता और लेखन के द्वारा राष्ट्रीय चेतना जगाई। महिलाओं की इस सक्रिय भागीदारी ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को एक जनांदोलन में बदलने में मदद की, बल्कि इससे समाज में महिलाओं की स्थिति को भी सशक्त बनाया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका ने यह सिद्ध किया कि वे केवल घरेलू दायरे तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में भी बराबर की भागीदार हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं का यह योगदान भविष्य के लिए प्रेरणा बना और स्वतंत्र भारत में महिलाओं को अधिकारों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हुआ।

---

* **सहायक आचार्य, इतिहास विभाग, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्ट्डीज**

दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी के प्रमुख चरण

1857 का स्वतंत्रता संग्राम और महिलाएँ

1857 का स्वतंत्रता संग्राम भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसे भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, सिपाही विद्रोह या भारतीय विद्रोह के नाम से भी जाना जाता है। इस विद्रोह में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों ने हिस्सा लिया, जिनमें महिलाएँ भी शामिल थीं। महिलाओं ने इस संग्राम में न केवल सहयोगी भूमिका निभाई, बल्कि कई वीरांगनाओं ने युद्ध के मैदान में वीरता का परिचय देते हुए अंग्रेजों का मुकाबला किया। 1857 के विद्रोह में महिलाओं ने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में योगदान दिया। उन्होंने अपने राज्यों और समुदायों का नेतृत्व किया, सैनिकों को संगठित किया, कूटनीति की और युद्ध में भाग लिया। इस संग्राम में कुछ प्रमुख महिला सेनानियों ने अपने साहस और बलिदान से इतिहास में अमर स्थान प्राप्त किया।

1857 की प्रमुख महिला सेनानियाँ

1. रानी लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी) : "मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी"—यह वाक्य रानी लक्ष्मीबाई के अदम्य साहस और देशभक्ति को दर्शाता है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई इस विद्रोह की सबसे प्रमुख महिला सेनानियों में से एक थीं। अंग्रेजों ने उनके राज्य को "डॉक्ट्रिन ऑफ लैप्स" नीति के तहत हड़पने की कोशिश की, लेकिन उन्होंने इसका विरोध किया। 1857 में उन्होंने अपनी झाँसी की रक्षा के लिए अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया।बउन्होंने महिलाओं सहित अपनी सेना संगठित की और अंग्रेजों के खिलाफ बहादुरी से युद्ध किया। 17 जून 1858 को ग्वालियर में युद्ध के दौरान वीरगति को प्राप्त हुईं रानी लक्ष्मीबाई का यह बलिदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नारी शक्ति का प्रतीक बन गया।

2. बेगम हजरत महल : अवध की शासिका बेगम हजरत महल ने 1857 के विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने लखनऊ में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह का नेतृत्व किया। उनकी सेना ने अंग्रेजों को कड़ी टक्कर दी और लखनऊ पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों से संघर्ष के बाद उन्हें नेपाल में शरण लेनी पड़ी, जहाँ 1879 में उनकी मृत्यु हो गई।

3. झलकारी बाई : झलकारी बाई झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की प्रमुख सहयोगी थीं।बवे झाँसी की सेना में एक योद्धा थीं और लक्ष्मीबाई की हमशक्ल मानी जाती थीं। उन्होंने अंग्रेजों को भ्रमित करने के लिए खुद को रानी लक्ष्मीबाई के रूप में प्रस्तुत किया और झाँसी की रक्षा के लिए वीरगति प्राप्त की।

4. अवंतीबाई लोधी : रामगढ़ (मध्य प्रदेश) की शासिका अवंतीबाई लोधी ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। उन्होंने अपने राज्य की रक्षा के लिए सेना संगठित की और युद्ध में वीरगति प्राप्त की।

5. ऊदा देवी : ऊदा देवी एक दलित वीरांगना थीं, जिन्होंने लखनऊ के सिकंदर बाग में अंग्रेजी सेना के खिलाफ संघर्ष किया। उन्होंने छिपकर अंग्रेजी सैनिकों पर हमला किया और कई अंग्रेजों को मार गिराया।

6. रानी ताप्ती : बुंदेलखंड की शासिका रानी ताप्ती ने अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई लड़ी और स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

महिलाओं की परोक्ष भूमिका

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में कुछ महिलाएँ प्रत्यक्ष रूप से युद्ध में शामिल नहीं हुईं, लेकिन उन्होंने अन्य तरीकों से योगदान दिया:

1. **सैनिकों की सहायता** – कई महिलाओं ने स्वतंत्रता सेनानियों को भोजन, आश्रय और धन प्रदान किया।
2. **गुप्तचर (जासूसी) कार्य** – कुछ महिलाओं ने अंग्रेजों की गुप्त सूचनाएँ स्वतंत्रता सेनानियों तक पहुँचाने का कार्य किया।
3. **क्रांतिकारी विचारधारा का प्रचार** – महिलाओं ने समाज में स्वतंत्रता की भावना जगाने के लिए गीतों, कहानियों और भाषणों के माध्यम से जनजागृति की।

महिलाओं की भागीदारी का प्रभाव

1857 का विद्रोह भले ही असफल रहा, लेकिन इसने भारतीय समाज में महिलाओं की शक्ति और योगदान को उजागर किया। इस संग्राम के बाद महिलाओं में राष्ट्रीय चेतना और आत्मनिर्भरता की भावना विकसित हुई, जिससे आगे के स्वतंत्रता आंदोलनों में उनकी भागीदारी और भी बढ़ गई। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने अपनी वीरता, साहस और नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने न केवल युद्ध के मैदान में अंग्रेजों का मुकाबला किया, बल्कि समाज में स्वतंत्रता की भावना को भी जाग्रत किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, झलकारी बाई जैसी वीरांगनाओं ने इस विद्रोह को नया आयाम दिया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को स्थापित किया। उनका बलिदान भारतीय इतिहास में अमर है और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

असहयोग आंदोलन और महिलाएँ

असहयोग आंदोलन (1920-1922) भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलाया गया पहला व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन था। यह आंदोलन पूरी तरह से अहिंसक था और इसका उद्देश्य ब्रिटिश शासन को आर्थिक और प्रशासनिक रूप से कमजोर करना था। इस आंदोलन में समाज के हर वर्ग ने भाग लिया, और महिलाओं की भागीदारी भी महत्वपूर्ण रही। भारतीय महिलाओं ने पहली बार इतने बड़े पैमाने पर राजनीति में प्रवेश किया और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आवाज़ उठाई।

असहयोग आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

महिलाओं ने ब्रिटिश वस्त्रों, शराब, अंग्रेजी स्कूलों और सरकारी संस्थानों का बहिष्कार किया। उन्होंने अपने परिवारों को स्वदेशी अपनाने और खादी पहनने के लिए प्रेरित किया। महिलाओं ने अपने घरों में चरखा

चलाकर खादी बनाई और स्वदेशी आंदोलन को मजबूती दी। कई महिलाओं ने ब्रिटिश दफ्तरों और अदालतों के सामने धरने दिए। उन्होंने सड़कों पर निकलकर ब्रिटिश कानूनों का विरोध किया और स्वदेशी आंदोलन में भाग लिया। कुछ महिलाओं ने अपने गहने और संपत्ति बेचकर आंदोलन के लिए धन जुटाया। असहयोग आंदोलन के दौरान हजारों महिलाएँ पहली बार जेल गईं। महिलाओं ने पुलिस की लाठियाँ खाईं और यातनाएँ सही, लेकिन अपने कदम पीछे नहीं हटाए।

असहयोग आंदोलन में प्रमुख महिलाएँ

1 सरोजिनी नायडू : सरोजिनी नायडू असहयोग आंदोलन में सक्रिय रहीं और महिलाओं को संगठित किया। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए प्रेरित किया। बाद में वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष बनीं।

2 कस्तूरबा गांधी : कस्तूरबा गांधी ने आंदोलन के दौरान कई सत्याग्रहों में भाग लिया। उन्होंने महिलाओं को विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने और खादी अपनाने के लिए प्रेरित किया। वे कई बार जेल भी गईं और ब्रिटिश शासन के खिलाफ आंदोलन में अग्रणी रहीं।

3 कमला नेहरू : कमला नेहरू ने न केवल खुद आंदोलन में भाग लिया, बल्कि उन्होंने अन्य महिलाओं को भी इसमें शामिल किया। उन्होंने कई विरोध प्रदर्शनों का नेतृत्व किया और स्वदेशी आंदोलन को समर्थन दिया।

4 विजयलक्ष्मी पंडित : विजयलक्ष्मी पंडित, जो बाद में स्वतंत्र भारत की पहली महिला राजदूत बनीं, असहयोग आंदोलन के दौरान सक्रिय रहीं। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की नीतियों के खिलाफ आवाज़ उठाई और सत्याग्रह में भाग लिया।

असहयोग आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का प्रभाव

1. **महिलाओं का राजनीतिकरण** – इस आंदोलन ने महिलाओं को पहली बार बड़े पैमाने पर राजनीति में प्रवेश करने का अवसर दिया।

2. **नारी सशक्तिकरण को बढ़ावा** – महिलाओं ने यह साबित किया कि वे केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि देश की आज़ादी के संघर्ष में भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो सकती हैं।

3. **आंदोलन को जन आंदोलन में बदलना** – महिलाओं की भागीदारी ने असहयोग आंदोलन को और अधिक व्यापक बनाया।

4. **आगे के आंदोलनों के लिए नींव तैयार करना** – इस आंदोलन में भाग लेने वाली कई महिलाएँ बाद में सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में भी सक्रिय रहीं।

असहयोग आंदोलन भारतीय महिलाओं के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ साबित हुआ। इस आंदोलन में भाग लेकर उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपनी शक्ति का परिचय दिया और स्वतंत्रता संग्राम में अपनी

महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह आंदोलन महिलाओं को राजनीतिक रूप से जागरूक करने और भारतीय समाज में उनकी स्थिति को मजबूत करने में सहायक बना। इस आंदोलन की सफलता ने भारत में नारी सशक्तिकरण की नींव रखी और भविष्य में होने वाले आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन और महिलाएँ

सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-1934) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसे महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के अन्यायपूर्ण कानूनों के खिलाफ शुरू किया था। यह आंदोलन विशेष रूप से नमक सत्याग्रह से जुड़ा हुआ था, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के नमक कर का विरोध करना था। इस आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी पहले से अधिक प्रभावशाली और संगठित रही। उन्होंने घरों से बाहर निकलकर सत्याग्रह, जुलूस, धरना, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और जेल यात्राओं में भाग लिया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

महात्मा गांधी के नेतृत्व में डांडी मार्च (12 मार्च - 6 अप्रैल 1930) हुआ, जिसमें महिलाओं ने भी भाग लिया। महिला सत्याग्रहियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में समुद्र किनारे जाकर नमक बनाया और ब्रिटिश कानूनों का उल्लंघन किया। उन्होंने नमक बनाने, नमक कानून तोड़ने और आंदोलन के प्रचार-प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई। महिलाओं ने ब्रिटिश कपड़ों, शराब और अन्य विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया। उन्होंने घर-घर जाकर खादी अपनाने और स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दिया। बाजारों में जाकर ब्रिटिश सामान की होली जलाई गई, महिलाओं ने सरकारी दफ्तरों, अदालतों और पुलिस स्टेशनों के सामने सत्याग्रह किया और ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाज़ उठाई। उन्होंने नमक कानून तोड़ने, जंगल सत्याग्रह और शराबबंदी आंदोलन में भाग लिया। हजारों महिलाएँ इस आंदोलन के दौरान गिरफ्तार हुईं और जेल गईं। ब्रिटिश पुलिस द्वारा किए गए लाठीचार्ज और दमन का महिलाओं ने साहसपूर्वक सामना किया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रमुख महिलाएँ

1 सरोजिनी नायडू : सरोजिनी नायडू इस आंदोलन में अग्रणी थीं। उन्होंने धरसाना नमक सत्याग्रह (गुजरात) का नेतृत्व किया, जहाँ पुलिस ने निर्दयतापूर्वक लाठीचार्ज किया, लेकिन सत्याग्रहियों ने अहिंसा नहीं छोड़ी। उन्हें कई बार गिरफ्तार किया गया और जेल भेजा गया।

2 कमला नेहरू : कमला नेहरू ने इलाहाबाद में सत्याग्रह आंदोलन को सक्रिय रूप से नेतृत्व दिया। उन्होंने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का नेतृत्व किया और कई सभाएँ आयोजित कीं।

3 कस्तूरबा गांधी : कस्तूरबा गांधी ने महिलाओं को आंदोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। वे खुद भी जेल गईं और कई सत्याग्रहों में भाग लिया।

4 अरुणा आसफ अली : अरुणा आसफ अली ने सत्याग्रहियों को संगठित किया और महिलाओं को इस आंदोलन से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे जेल में महिलाओं की दुर्दशा को उजागर करने और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष करती रहीं।

5 विजयलक्ष्मी पंडित : उन्होंने महिलाओं के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया और ब्रिटिश सरकार के खिलाफ मोर्चा खोला। उन्हें भी कई बार जेल भेजा गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का प्रभाव

इस आंदोलन ने महिलाओं को एक मजबूत राजनीतिक पहचान दी और उन्हें स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अवसर मिला। महिलाओं ने यह साबित किया कि वे केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि राष्ट्रीय आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी निभा सकती हैं। महिलाओं की भागीदारी से यह आंदोलन केवल राजनीतिक नहीं रहा, बल्कि एक सामाजिक और जन आंदोलन बन गया। इस आंदोलन में सक्रिय महिलाएँ आगे चलकर भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सविनय अवज्ञा आंदोलन भारतीय महिलाओं के लिए एक ऐतिहासिक मोड़ था। इस आंदोलन में भाग लेकर उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपनी शक्ति का परिचय दिया और स्वतंत्रता संग्राम में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह आंदोलन महिलाओं को राष्ट्रीय संघर्ष में समान रूप से भाग लेने का अवसर देने वाला पहला बड़ा आंदोलन बना। उनकी भागीदारी ने न केवल आंदोलन को सफल बनाया, बल्कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारत में महिलाओं की स्थिति को सशक्त किया।

भारत छोड़ो आंदोलन और महिलाएँ

भारत छोड़ो आंदोलन (1942) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अंतिम और सबसे व्यापक जनांदोलन था, जिसे महात्मा गांधी ने "अंग्रेजों भारत छोड़ो" के नारे के साथ शुरू किया था। यह आंदोलन पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया था और इसमें समाज के सभी वर्गों ने भाग लिया। इस आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी पहले की तुलना में अधिक संगठित और प्रभावशाली रही। उन्होंने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई, सत्याग्रह किया, भूमिगत क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लिया और ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ आंदोलन को गति दी।

भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की भूमिका

महिलाओं ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सत्याग्रह किया और जुलूस निकाले। उन्होंने सरकारी कार्यालयों और रेलवे स्टेशनों पर धरना दिया और ब्रिटिश कानूनों का उल्लंघन किया। हजारों महिलाएँ इस आंदोलन के दौरान गिरफ्तार हुईं और जेल में यातनाएँ झेलीं। कई महिलाओं ने ब्रिटिश दमन के बावजूद संघर्ष जारी रखा। गुप्त गतिविधियों और क्रांतिकारी कार्यों में भागीदारी कई महिलाओं ने गुप्त रूप से पत्र, सूचना और क्रांतिकारी साहित्य वितरित किया। कुछ महिलाओं ने बम और हथियारों की तस्करी करके ब्रिटिश प्रशासन

को चुनौती दी। प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के बाद महिलाओं ने आंदोलन का नेतृत्व किया और ब्रिटिश सरकार को खुली चुनौती दी।

भारत छोड़ो आंदोलन में प्रमुख महिलाएँ

1 अरुणा आसफ अली : अरुणा आसफ अली को "भारत छोड़ो आंदोलन की हीरोइन" कहा जाता है। उन्होंने 9 अगस्त 1942 को बंबई (मुंबई) के गोवालिया टैंक मैदान में तिरंगा फहराकर आंदोलन की शुरुआत की। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें "अत्यधिक खतरनाक विद्रोही" घोषित किया, लेकिन वे अंडरग्राउंड रहकर आंदोलन को संगठित करती रहीं।

2 उषा मेहता : उषा मेहता ने गुप्त रूप से "कॉन्ग्रेस रेडियो" चलाया, जिससे क्रांतिकारी संदेश पूरे देश में फैलाए गए।उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सेंसरशिप को तोड़कर आंदोलन को मजबूत किया।

3 कस्तूरबा गांधी : कस्तूरबा गांधी ने जेल में रहकर महिलाओं को संगठित किया और स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित किया। उन्होंने अंग्रेजों के अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध किया और कई बार जेल गईं।

4 सुचेता कृपलानी : सुचेता कृपलानी ने महिलाओं को संगठित किया और गांधीजी के साथ स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया। वे स्वतंत्र भारत की पहली महिला मुख्यमंत्री भी बनीं।

5 मातंगिनी हाजरा : मातंगिनी हाजरा बंगाल की एक क्रांतिकारी थीं, जिन्होंने आंदोलन में भाग लिया। वे तिरंगा लिए हुए ब्रिटिश सैनिकों के सामने खड़ी रहीं और गोली लगने के बावजूद "वंदे मातरम" का उद्घोष करती रहीं।

महिलाओं की भागीदारी का प्रभाव

महिलाओं की भागीदारी ने भारत छोड़ो आंदोलन को एक संपूर्ण राष्ट्रीय आंदोलन बना दिया। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने ब्रिटिश सरकार को अधिक क्रूर दमन की नीति अपनाने पर मजबूर कर दिया, लेकिन इसके बावजूद आंदोलन रुका नहीं। यह आंदोलन महिलाओं के लिए राजनीतिक सशक्तिकरण का माध्यम बना और स्वतंत्र भारत में उनकी सक्रिय भूमिका की नींव रखी। भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी ने यह साबित कर दिया कि वे केवल सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि राजनीतिक और क्रांतिकारी गतिविधियों में भी सक्रिय भूमिका निभा सकती हैं। इस आंदोलन में महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया और भारतीय इतिहास में अपना अमिट योगदान दिया। उनकी वीरता, साहस और बलिदान आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बने रहेंगे।

क्रांतिकारी गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी केवल अहिंसक आंदोलनों तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने क्रांतिकारी गतिविधियों में भी साहसिक योगदान दिया। उन्होंने बम निर्माण, गुप्त संदेशों के

आदान-प्रदान, हथियारों की तस्करी, अंग्रेजों के खिलाफ प्रत्यक्ष हमलों और कई क्रांतिकारी संगठनों में सक्रिय भूमिका निभाई। महिलाओं ने यह साबित किया कि वे केवल समाज की संरक्षक नहीं, बल्कि स्वतंत्रता के लिए बलिदान देने वाली वीरांगनाएँ भी हैं। महिलाओं ने क्रांतिकारियों के संदेश, गुप्त दस्तावेज़ और हथियारों को सुरक्षित रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की गतिविधियों की जासूसी की और क्रांतिकारियों को जानकारी प्रदान की। कुछ महिलाओं ने बम बनाना सीखा और क्रांतिकारी दलों को हथियार पहुँचाने का काम किया। वे गुप्त रूप से पिस्तौल, बारूद और बम क्रांतिकारियों तक पहुँचाने में मददगार रहीं। कई महिलाओं ने ब्रिटिश अधिकारियों पर हमले किए और पुलिस थानों पर बमबारी में भाग लिया। उन्होंने अपनी पहचान गुप्त रखते हुए गुप्त अभियानों को अंजाम दिया। क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेने वाली कई महिलाओं को ब्रिटिश पुलिस ने गिरफ्तार किया, यातनाएँ दीं और कई को फाँसी भी हुई। कई महिलाओं ने आत्मसमर्पण करने के बजाय मौत को चुना।

प्रमुख क्रांतिकारी महिलाएँ

1 कल्पना दत्त : कल्पना दत्त ने चटगाँव शस्त्रागार कांड (1930) में सक्रिय भूमिका निभाई। उन्होंने क्रांतिकारी संगठन "युगांतर" के लिए काम किया और बम बनाने में प्रशिक्षित थीं। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई, लेकिन बाद में रिहा कर दिया गया।

2 प्रीतिलता वड्डेदार : प्रीतिलता वड्डेदार चटगाँव विद्रोह में शामिल थीं। उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों पर हमले किए और एक अंग्रेज क्लब पर हमला करने के बाद गिरफ्तारी से बचने के लिए साइनाइड खाकर शहीद हो गईं।

3 बीना दास : बीना दास ने 1932 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह में ब्रिटिश गवर्नर स्टेनली जैक्सन पर पिस्तौल से हमला किया था। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और कड़ी सजा दी गई।

4 दुर्गा भाभी (दुर्गावती देवी) :दुर्गा भाभी भगत सिंह और चंद्रशेखर आज़ाद की करीबी सहयोगी थीं। उन्होंने भगत सिंह को लाहौर से भागने में मदद की और अंग्रेज अधिकारियों पर हमले में भी भाग लिया। उन्होंने अपने गहने बेचकर क्रांतिकारियों के लिए धन जुटाया।

5 सुशीला दीदी : सुशीला दीदी ने हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (HSRA) के लिए काम किया और क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहीं। उन्होंने चंद्रशेखर आज़ाद और भगत सिंह को सहायता प्रदान की।

6 मदालसा देवी और राजकुमारी गुप्ता : इन्होंने हथियारों की तस्करी कर चंद्रशेखर आज़ाद और अन्य क्रांतिकारियों तक पहुँचाए। राजकुमारी गुप्ता ने काकोरी कांड के दौरान बम और पिस्तौल क्रांतिकारियों तक पहुँचाने में मदद की।

7 कनकलता बरुआ : कनकलता बरुआ ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ब्रिटिश पुलिस पर हमला करने वाले दल का नेतृत्व किया। उन्हें गोली मार दी गई, लेकिन उन्होंने भारतीय झंडे को गिरने नहीं दिया।

महिलाओं की क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रभाव

महिलाओं की सक्रियता से ब्रिटिश प्रशासन अस्थिर हुआ और क्रांतिकारी आंदोलन को और बल मिला। महिला सशक्तिकरण और स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़ती भागीदारी इन वीरांगनाओं ने यह साबित किया कि महिलाएँ भी देश के लिए हथियार उठा सकती हैं और अपनी जान की बाज़ी लगा सकती हैं।

इन महिलाओं ने आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित किया और स्वतंत्रता संग्राम में नारी शक्ति की भूमिका को उजागर किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने केवल सत्याग्रह और अहिंसक आंदोलनों में ही नहीं, बल्कि सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधियों में भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता को खुली चुनौती दी और कई बार अपनी जान की कुर्बानी भी दी। इन वीरांगनाओं का साहस, बलिदान और संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के गौरवशाली इतिहास का एक अविस्मरणीय अध्याय है।

निष्कर्ष

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका केवल सामाजिक या अहिंसक आंदोलनों तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधियों में भी अभूतपूर्व योगदान दिया। देश की आज़ादी के लिए पुरुष क्रांतिकारियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर उन्होंने न केवल ब्रिटिश शासन को चुनौती दी, बल्कि अपने साहस, बलिदान और संघर्ष से इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय भी लिखा।

महिलाओं ने न केवल क्रांतिकारी गतिविधियों का नेतृत्व किया, बल्कि उन्होंने अपनी जान की बाज़ी लगाकर ब्रिटिश सत्ता को हिला दिया। कल्पना दत्त, प्रीतिलता वड्डेदार, बीना दास, दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी जैसी वीरांगनाएँ ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ हथियार उठाने वाली महिलाओं की प्रतीक बनीं। इन महिलाओं ने यह साबित कर दिया कि वे केवल घरेलू भूमिकाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति देने से भी पीछे नहीं हटेंगी। महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से ब्रिटिश प्रशासन को यह एहसास हुआ कि स्वतंत्रता संग्राम केवल पुरुषों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें हर वर्ग और लिंग के लोग शामिल हो चुके हैं। उनकी भागीदारी ने अंग्रेजों के दमनकारी नीतियों को चुनौती दी और क्रांतिकारी आंदोलन को और अधिक मजबूत बनाया। इन गतिविधियों ने ब्रिटिश सत्ता को अस्थिर किया और स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा दी। क्रांतिकारी गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी ने भारतीय समाज में नारी सशक्तिकरण की नींव रखी। उन्होंने यह दिखाया कि महिलाएँ न केवल स्वतंत्रता संग्राम में भाग ले सकती हैं, बल्कि नेतृत्व भी कर सकती हैं। उनकी भूमिका ने भविष्य में महिलाओं की राजनीतिक,

सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। स्वतंत्र भारत में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी का श्रेय इन क्रांतिकारी महिलाओं को जाता है, जिन्होंने अपने साहस और बलिदान से नारी शक्ति की नई परिभाषा गढ़ी। क्रांतिकारी महिलाओं की कहानियाँ आज भी प्रेरणा का स्रोत हैं। उनके संघर्ष, बलिदान और वीरता की गाथाएँ हमें यह सिखाती हैं कि स्वतंत्रता की कीमत क्या होती है और अपने देश के लिए कर्तव्य निभाना कितना महत्वपूर्ण है। ये महिलाएँ भारतीय इतिहास में केवल स्वतंत्रता सेनानी नहीं, बल्कि समाज को जागरूक करने वाली अग्रदूत भी बनीं। महिलाओं ने न केवल सशस्त्र क्रांति में भाग लिया, बल्कि सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन और अन्य राष्ट्रवादी आंदोलनों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह भागीदारी केवल राजनीतिक रूप से नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से भी क्रांतिकारी थी, क्योंकि इसने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में एक नई पहचान दी।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान केवल एक अध्याय भर नहीं है, बल्कि यह हमारी राष्ट्रीय पहचान का अभिन्न अंग है। उन्होंने यह दिखाया कि स्वतंत्रता संग्राम केवल पुरुषों का कार्यक्षेत्र नहीं था, बल्कि महिलाओं ने भी समान रूप से इसमें भाग लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति को संभव बनाया। आज, जब हम एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में खड़े हैं, तो हमें इन वीरांगनाओं के बलिदान को कभी नहीं भूलना चाहिए। उनका साहस, समर्पण और निडरता हमेशा हमें अपने कर्तव्यों की याद दिलाते रहेंगे और आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित करते रहेंगे।

संदर्भ :-

1. चंद्र, बिपिन. (2019). *आधुनिक भारत का इतिहास*. हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैकस्वान. पृ. 210-225.
2. बोस, सुभाष चंद्र. (2015). *भारत की आजादी की लड़ाई*. नागपुर : नॉलेज पब्लिशर्स. पृ. 145-160.
3. पनिकर, के. एन. (2017). *भारतीय राष्ट्रवाद और स्वतंत्रता संग्राम*. पीयरसन पब्लिशिंग. पृ. 180-195.
4. दत्त, कल्पना. (2005). *चटगाँव विद्रोह: एक महिला क्रांतिकारी की कहानी*. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट. पृ. 55-78.
5. अली, अरुणा आसफ. (2010). *भारत छोड़ो आंदोलन और क्रांतिकारी महिलाएँ*. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार. पृ. 210-230.
6. शर्मा, हेमंत. (2016). *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नारी शक्ति*. आगरा : साहित्य भवन पब्लिकेशन. पृ. 90-110.
7. गुहा, रामचंद्र. (2019). *गांधी: भारत के निर्माता*. पेंग्विन वाइकिंग. पृ. 300-320
8. चटर्जी, रमा. (2018). *भारतीय महिलाओं का क्रांतिकारी संघर्ष*. मुम्बई : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ. 170-190.
9. मेहता, अशोक. (2007). *स्वतंत्रता संग्राम के अनसुने नायक*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. 135-155.

THE ROLE OF PUBLIC BROADCASTING IN INDIA

Kshitiz Dwivedi*

kshitiz.staringz@gmail.com

Abstract

Public broadcasting has played a crucial role in shaping the media landscape of India by providing information, education, and entertainment to its vast and diverse population. As a government-controlled and publicly funded entity, it has served as a platform for national integration, the preservation of cultural heritage, and the dissemination of news and current affairs. This research paper examines the historical evolution, structure, functions, challenges, and future prospects of public broadcasting in India, focusing on its key institutions—Doordarshan and All India Radio (AIR).

The development of public broadcasting in India dates back to the pre-independence era, with the establishment of All India Radio in 1936, followed by the launch of Doordarshan in 1959. Over the decades, these institutions have expanded their reach, adapting to changing technologies and audience expectations. AIR has played a pioneering role in reaching rural and urban populations with diverse programming, including news, educational content, cultural performances, and entertainment. Similarly, Doordarshan has been instrumental in bringing television broadcasting to every corner of the country, offering a mix of informative and entertaining content that reflects India's pluralistic society.

Public broadcasting in India functions with the primary objective of serving the public interest rather than commercial gains. It provides an unbiased platform for disseminating government policies, emergency alerts, and developmental programs. Moreover, it acts as a catalyst for social change by addressing critical issues such as health, education, women's empowerment, and environmental awareness. Through

* **Research Scholar, Dr RML Avadh University, Ayodhya**

initiatives like 'Krishi Darshan' and 'Yuva Vani,' public broadcasters have contributed significantly to knowledge dissemination and skill development among the masses.

Despite its significant contributions, public broadcasting in India faces several challenges. One of the primary concerns is political interference, as government control over funding and editorial policies often raises questions about impartiality. Additionally, competition from private media networks and digital platforms has led to a decline in audience engagement. With the advent of satellite television and digital streaming services, public broadcasters struggle to retain their traditional viewership, particularly among the younger generation. Further, financial constraints limit the scope for technological advancements and content diversification, making it difficult for public broadcasters to compete in the evolving media landscape.

The future of public broadcasting in India hinges on its ability to adapt to the digital era. With increasing internet penetration and mobile accessibility, Doordarshan and AIR must leverage digital platforms to expand their reach. Strategies such as the development of mobile applications, live streaming services, and interactive content can enhance audience engagement. Additionally, fostering partnerships with private media organizations and adopting a hybrid funding model—including public grants, advertisements, and crowdfunding—can provide financial stability and creative freedom.

Another crucial aspect is the need for regulatory reforms to ensure greater autonomy for public broadcasters. Establishing an independent public broadcasting authority can help maintain editorial independence and prevent political interference. Furthermore, integrating cutting-edge technologies such as artificial intelligence, data analytics, and virtual reality can modernize public broadcasting, making it more relevant in today's competitive media environment.

In conclusion, public broadcasting in India remains an indispensable pillar of the country's media ecosystem. It has significantly contributed to national development by informing, educating, and entertaining diverse audiences. However, to maintain its relevance in the digital age, public broadcasters must embrace technological advancements, diversify content, and ensure editorial independence. By implementing strategic reforms and innovative approaches, India's public broadcasting sector can continue to serve the public interest while adapting to the dynamic needs of a rapidly evolving media landscape.

This research paper explores the historical development, structure, functions, and challenges of public broadcasting in India, with a specific focus on Doordarshan and AIR. It also examines the strategies that can be employed to enhance the effectiveness of public broadcasting in the digital age. By analyzing current trends and future possibilities, this study aims to provide insights into how public broadcasting can continue to serve as a vital instrument of democracy and social progress in India.

1. Introduction

Public broadcasting serves as a cornerstone of democratic communication by providing citizens with access to unbiased news, educational content, cultural programs, and essential advisory services. Unlike commercial broadcasters that operate primarily for profit, public broadcasting focuses on serving the public interest by ensuring accessibility to information and entertainment for all segments of society. In a vast and diverse country like India, public broadcasting has been instrumental in unifying people and fostering an informed citizenry. It provides a vital source of information for millions, including those in remote and marginalized regions, who may not have access to private or commercial media outlets.

India's linguistic and cultural diversity presents unique challenges and opportunities for public broadcasting. With over 22 officially recognized languages and hundreds of dialects spoken across the country, the need for an inclusive and representative media platform is paramount. Public broadcasting, primarily through Doordarshan and All India Radio (AIR), has attempted to bridge this gap by producing content that reflects the nation's multicultural ethos. These institutions have played a pivotal role in educating citizens on critical national and international issues, promoting social awareness, and preserving India's rich cultural heritage through music, drama, and regional storytelling.

The historical trajectory of public broadcasting in India can be traced back to the establishment of All India Radio in 1936. Initially conceived as a medium to inform and entertain the masses, AIR expanded its reach post-independence to align with the nation-building objectives of the government. The advent of Doordarshan in 1959 further strengthened public broadcasting by introducing television as a powerful tool for communication and education. Over the decades, these platforms have evolved to include a wide range of programming, from agricultural advisories and science education to cultural performances and national integration campaigns.

Despite its significant contributions, public broadcasting in India is not without its challenges. Political interference has often raised concerns regarding the impartiality of news reporting and editorial decisions. The reliance on government funding has also led to financial constraints that limit technological advancements and content innovation. Furthermore, with the rise of private television channels, digital media, and online streaming platforms, public broadcasters face stiff competition in retaining audience engagement. Younger demographics, in particular, are shifting towards digital platforms, reducing the traditional viewership base of Doordarshan and AIR.

Nevertheless, the relevance of public broadcasting in India remains undiminished. In times of crisis, such as natural disasters or public health emergencies, Doordarshan and AIR continue to be the primary sources of credible information. Moreover, the role of public broadcasting in promoting literacy, gender equality, and social harmony underscores its importance in a democratic society. The need to modernize and adapt to changing media consumption patterns is crucial for public broadcasters to remain effective and impactful.

2. Historical Evolution of Public Broadcasting in India

2.1 Early Development

Broadcasting in India began in 1927 with private radio stations. The British India government took over broadcasting facilities and launched the Indian State Broadcasting Service (ISBS) on April 1, 1930, initially on an experimental basis for two years. The ISBS became a permanent service in May 1932 and was later renamed All India Radio on June 8, 1936. The Indian Broadcasting Company (IBC) started organizing radio broadcasting from the Bombay Station on July 23rd, 1927, and this date is celebrated as National Broadcasting Day. After independence in 1947, AIR became an essential tool for national development, with a focus on literacy, rural development, and national integration. In 1956, the name AKASHVANI was adopted for the National Broadcaster.

2.2 Growth of All India Radio (AIR) and Television Broadcasting

The Expansion of All India Radio (AIR)

All India Radio (AIR), established in 1936, has played a significant role in shaping India's broadcasting landscape. Initially, it was a colonial tool for information dissemination, but after independence in 1947, it transformed into a key public service

broadcaster. The Indian government recognized the importance of radio in reaching its diverse and vast population, especially in rural areas where literacy rates were low. AIR expanded rapidly post-independence, adding new stations across the country to ensure maximum coverage.

A major milestone for AIR was the introduction of Vividh Bharati in 1957, which offered a mix of music, news, and entertainment. The government used AIR as a medium to promote national integration and socio-economic development through informative programs on agriculture, health, and education. The introduction of the National Program of Music and news bulletins in multiple languages further strengthened its reach.

By the 1980s, AIR had established itself as an essential source of information and entertainment for millions. The introduction of FM radio in the 1990s gave it a new dimension, allowing for clearer sound quality and localized content. With technological advancements, AIR has continued to evolve, incorporating digital platforms and podcasts to stay relevant in the modern media landscape.

The Rise of Doordarshan

Television broadcasting in India began with the launch of Doordarshan (DD) in 1959. Initially, it was an experimental service, with limited programming and accessibility, confined mainly to urban centers like Delhi. For over a decade, television remained a niche medium due to high costs and limited infrastructure. However, with the government's vision of using television as an educational and informational tool, Doordarshan expanded gradually.

A major turning point came in 1975 with the SITE (Satellite Instructional Television Experiment), which aimed to provide educational content to rural communities through satellite technology. This project demonstrated television's potential for mass education and led to broader expansion efforts. The 1980s saw the introduction of the National Program, which brought content to a wider audience and standardized programming across the country. Regional language channels were also launched to cater to India's linguistic diversity, ensuring greater inclusivity.

The landmark moment for Doordarshan was in 1982 when India hosted the Asian Games, leading to the introduction of color television. This development significantly boosted viewership and set the stage for Doordarshan's golden era in the 1980s, with popular serials like Ramayan and Mahabharat gaining national prominence.

Impact of Liberalization and Competition

The 1990s marked a new era in Indian broadcasting with the liberalization of the media industry. Private television channels entered the market, offering viewers a variety of choices. This competition challenged Doordarshan's dominance but also pushed it to modernize and improve content quality. While private networks attracted urban audiences with entertainment-driven content, Doordarshan maintained its focus on rural and marginalized communities, ensuring continued access to news, education, and cultural programming.

Despite competition, Doordarshan remains a crucial medium for government initiatives and public welfare programs. Today, with the digital revolution, it is adapting to new platforms while preserving its core mission of serving the public interest..

3. Structure and Functions of Public Broadcasting

3.1 All India Radio (AIR)

AIR, operating under Prasar Bharati since 1997, offers diverse programming in multiple languages, covering news, music, education, and social issues. It has a vast reach, including FM, AM, and shortwave broadcasts, making it accessible to rural and remote areas. As India's premier public radio broadcaster, AIR plays a crucial role in disseminating information, preserving cultural heritage, and promoting national unity.

Organizational Structure

All India Radio functions as a division of Prasar Bharati, which is an autonomous body established to oversee public broadcasting in India. The Director General heads AIR and oversees its operations, ensuring adherence to its public service mandate. AIR's network consists of more than 470 stations spread across the country, covering over 99% of the population.

AIR operates through different services, each catering to specific audiences:

National Service: Broadcasts in Hindi and English, covering national and international news, cultural programs, and special government initiatives.

Regional Services: Offers content in various Indian languages and dialects, addressing the unique needs of different states and communities.

Vividh Bharati Service: Primarily entertainment-oriented, featuring music, radio dramas, and talk shows.

External Services Division (ESD): Broadcasts in multiple foreign languages, projecting India's perspective to international audiences.

Functioning and Content Delivery

AIR produces and broadcasts a wide range of programs, including news bulletins, educational programs, agricultural advisories, and cultural performances. It plays a vital role during emergencies and elections by providing verified information. The introduction of FM channels has made AIR more appealing to urban youth, while digitalization efforts are helping it stay relevant in the modern media landscape. Despite challenges from private broadcasters, AIR remains a trusted source of information, especially for rural and marginalized communities.

3.2 Doordarshan (DD)

Doordarshan, also under Prasar Bharati, operates multiple national and regional channels, providing news of daily events and development across the country, educational content, entertainment, and government programs. It played a vital role in disaster communication and public awareness campaigns once but is not as prevalent anymore in the era of mobile smartphones and social media. However, it still serves as an important public broadcaster, especially in rural and remote areas where digital access is limited.

Organizational Structure

Doordarshan functions as the television division of Prasar Bharati, India’s autonomous public broadcasting body. It is headed by the Director General of Doordarshan, who oversees its operations and ensures that it adheres to its public service mandate. The network is divided into three main categories of channels:

National Channels – Includes DD National, the flagship channel, and DD News, which provides 24-hour news coverage. These channels aim to offer unbiased information, educational programming, and cultural content.

Regional Channels – Doordarshan operates DD Bharati, DD Sports, and over 30 regional channels in different states, broadcasting content in various Indian languages to cater to the linguistic and cultural diversity of the country.

International Channels – DD India serves as the global voice of India, broadcasting news and cultural programs to an international audience.

Functioning and Content Delivery

Doordarshan follows a structured approach in its programming, aiming to balance news, education, entertainment, and public service broadcasting.

News and Information Dissemination – DD News provides daily national and international news in multiple languages, ensuring credibility and accessibility. Government policies, parliamentary proceedings, and public welfare schemes are also covered extensively.

Educational and Developmental Programs – Doordarshan has historically played a major role in distance education through programs like Gyan Darshan and various school and university-level broadcasts. It also supports farmers and rural communities with programs such as Krishi Darshan, which offers agricultural advice.

Entertainment and Cultural Promotion – While competing with private channels, Doordarshan has continued to produce classic television dramas, music programs, and documentaries that promote India's cultural heritage. Shows like Ramayan and Mahabharat in the 1980s gained nationwide popularity.

Public Awareness and Government Communication – Doordarshan has served as the primary medium for government initiatives like Mann Ki Baat and election-related broadcasts. It played a crucial role in public awareness campaigns during the COVID-19 pandemic, broadcasting health advisories and official updates.

4. The Role of Public Broadcasting in India

4.1 Promoting National Integration and Cultural Preservation

Public broadcasters in India contribute to national unity by promoting diverse cultures, languages, and traditions. Doordarshan's regional channels and AIR's language-based stations ensure representation for various communities. Given India's vast linguistic and cultural diversity, public broadcasting plays a crucial role in fostering a sense of shared identity while respecting regional uniqueness.

All India Radio (AIR) broadcasts in over **23 languages and 179 dialects**, ensuring that people from different linguistic backgrounds receive news and cultural programming in their native tongues. This inclusivity strengthens national integration by bridging regional divides and making people feel represented. Similarly, **Doordarshan's regional channels** showcase local art, music, and traditions, preserving

India's rich heritage. Programs like *Bharat Ek Khoj* and *Surabhi* have historically played a major role in educating viewers about the country's diverse traditions.

Apart from entertainment and cultural content, public broadcasters promote national integration through coverage of **national events** such as Independence Day, Republic Day, and state festivals, reinforcing a collective national identity. In times of crisis, AIR and Doordarshan have served as reliable sources of information, uniting citizens under a shared sense of responsibility. Despite modern challenges, public broadcasting remains essential in strengthening India's unity and cultural preservation.

4.2 Providing Reliable News and Information

In an era of misinformation, public broadcasters offer credible news, especially in times of crisis. AIR and Doordarshan play a significant role in broadcasting election results, government policies, and disaster warnings. As government-funded entities, they aim to provide factual and unbiased information, reaching even the most remote parts of the country.

Doordarshan's DD News and AIR's news bulletins have historically been trusted sources of verified information, particularly during national emergencies, elections, and significant policy announcements. They ensure that official updates are disseminated accurately without the sensationalism often seen in private media. Programs like Parliament News and Spotlight offer in-depth discussions on governance, helping citizens stay informed.

However, in recent times, public broadcasters have been struggling to stay relevant in this regard. The rise of private news channels, digital media, and social platforms has led to a decline in viewership for DD News and AIR. Additionally, criticisms of government influence over public broadcasters have raised concerns about editorial independence.

To regain credibility and reach younger audiences, AIR and Doordarshan need to adapt by expanding their digital presence, ensuring editorial neutrality, and improving real-time news delivery. Despite these challenges, their role in providing reliable news remains essential in a democracy like India.

4.3 Supporting Education and Awareness

Educational programming is a key function of Indian public broadcasting. Initiatives like Gyan Darshan, launched as a dedicated educational TV channel, and educational radio programs by All India Radio (AIR) have played a crucial role in

bridging the education gap, particularly in rural areas. These programs provided lessons on subjects like science, mathematics, and social studies, benefiting students who lacked access to quality educational institutions.

AIR has long supported adult literacy programs, agricultural advisories for farmers, and health awareness campaigns. Programs like Krishi Darshan have educated rural populations on modern farming techniques, while Doordarshan has aired health and hygiene awareness programs, contributing to public well-being. During the COVID-19 pandemic, public broadcasters played a vital role in spreading awareness about safety measures and vaccination.

However, this role has faded in recent years, with Ed-Tech platforms and online learning resources almost replacing traditional educational broadcasting. The increasing use of smartphones and digital classrooms has shifted the focus away from television and radio-based education. To remain relevant, Doordarshan and AIR need to integrate digital strategies, offer interactive learning experiences, and collaborate with modern education providers to continue serving as a vital tool for public education in India.

4.4 Serving Rural and Underserved Communities

Unlike private media, which focus on urban audiences, public broadcasters cater to rural and marginalized populations. **Doordarshan and All India Radio (AIR)** have historically been lifelines for rural communities, offering **agricultural programs, health awareness campaigns, and local news segments** tailored to their needs. Programs like **Krishi Darshan** have provided farmers with essential information on weather patterns, modern farming techniques, and government schemes, while AIR's rural broadcasts have addressed issues like maternal health, sanitation, and financial literacy.

Public broadcasting has also played a crucial role in disaster communication, ensuring that people in remote areas receive **early warnings about floods, cyclones, and other natural disasters.** Additionally, regional language programming ensures that diverse communities stay informed about local and national developments.

However, with the **rise of community radio stations, local YouTube channels, and mobile-based information services,** the exclusive role of AIR and Doordarshan in serving rural communities has weakened. Many rural audiences now turn to **digital platforms** for localized content and immediate updates. To stay relevant, public broadcasters must **enhance their digital presence**, collaborate with grassroots

media initiatives, and modernize content delivery to continue serving the underserved populations effectively.

5. Challenges Faced by Public Broadcasting in India

5.1 Competition from Private Media

Public broadcasting in India faces significant challenges from private media, which has grown rapidly since the **liberalization of the media industry in the 1990s**. Unlike **Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR)**, private news channels and FM radio stations operate with **greater financial flexibility, advanced technology, and aggressive marketing strategies**. Their ability to attract high-profile advertisers has allowed them to produce **high-quality, engaging content** that appeals to urban and younger audiences.

Private television networks offer **24/7 news cycles, reality shows, and diverse entertainment**, making them more appealing than Doordarshan's relatively structured and often bureaucratic content. Similarly, private FM radio stations provide localized entertainment and music-driven programs, drawing listeners away from AIR's traditional broadcasting model. The **rise of digital media, OTT platforms, and social media** has further intensified this competition, as audiences increasingly consume content on-demand rather than relying on scheduled public broadcasts.

Public broadcasters, being **government-funded**, often face **bureaucratic hurdles, limited budgets, and accusations of political bias**, making it difficult to compete with private media's dynamic and fast-paced approach. To remain relevant, AIR and Doordarshan must **modernize content, enhance digital integration, and adopt audience-driven strategies** to compete effectively in the changing media landscape.

5.2 Political and Governmental Influence

One of the major challenges faced by public broadcasting in India is **political and governmental influence**. Since **Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR)** are funded and controlled by the government through **Prasar Bharati**, concerns about **editorial independence and bias** often arise. Unlike private media, which operate independently, public broadcasters are sometimes seen as instruments for promoting government policies rather than providing neutral, balanced reporting.

Historically, both DD and AIR have been used by ruling governments to **broadcast political messages, highlight achievements, and control narratives during elections and major policy decisions**. This has led to criticisms that public broadcasters lack **critical journalism and diverse perspectives**, reducing their credibility among audiences who seek unbiased news. While Prasar Bharati was granted autonomy in **1997**, in practice, it still operates under significant government oversight, making true independence difficult to achieve.

In a democracy, public broadcasting should function as a **neutral platform**, offering diverse viewpoints and holding the government accountable. To overcome this challenge, reforms are needed to **strengthen editorial independence, ensure transparency in funding, and establish mechanisms to prevent political interference**. Without these changes, public broadcasters may continue to struggle with credibility and public trust in an era of competitive and independent media.

5.3 Financial Constraints

Public broadcasting in India faces **severe financial constraints**, which limit its ability to modernize, produce high-quality content, and compete with private media. **Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR)** primarily rely on **government funding** through **Prasar Bharati**, but the allocated budget is often insufficient to meet operational and technological demands. Unlike private broadcasters that thrive on advertising revenue and corporate sponsorships, public broadcasters struggle to secure independent funding, making them heavily dependent on state support.

The **decline in viewership and listenership** due to the rise of private television, FM radio, and digital platforms has further reduced advertising revenues for public broadcasters. Limited financial resources affect **content production quality**, leading to outdated programming formats, lower audience engagement, and an inability to attract top talent. This makes it difficult for AIR and Doordarshan to invest in **modern broadcasting technology, high-definition transmission, and digital expansion**, which are essential in today's competitive media landscape.

To overcome these financial challenges, public broadcasting in India needs to **diversify revenue sources**, explore **public-private partnerships**, and enhance its digital presence to attract new audiences and advertisers. Without financial stability, AIR and Doordarshan risk becoming obsolete in an era dominated by well-funded private media.

5.4 Technological Adaptation

One of the biggest challenges for public broadcasting in India is **keeping up with rapid technological advancements**. While private media companies invest heavily in **high-definition broadcasting, digital platforms, and interactive content**, **Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR)** have struggled to modernize at the same pace. The slow transition to **digital broadcasting, streaming services, and on-demand content** has resulted in declining viewership and listenership, especially among younger audiences who prefer mobile and online platforms over traditional TV and radio.

Many of Doordarshan's regional channels still use **older broadcasting infrastructure**, making them less appealing compared to **privately owned HD and 4K channels**. Similarly, AIR has been slow to expand its **podcasting and online streaming services**, limiting its ability to reach audiences who increasingly consume content through smartphones and smart speakers.

While **Prasar Bharati** has taken steps to digitize archives and launch online services, the adaptation process has been slow due to **bureaucratic delays and financial constraints**. To remain relevant, public broadcasters must **accelerate digital integration, improve mobile accessibility, and invest in cutting-edge broadcasting technology**. Without urgent technological upgrades, Doordarshan and AIR risk falling further behind in India's fast-evolving media landscape.

6. The Future of Public Broadcasting in India

Public broadcasting in India, led by **Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR)**, has played a crucial role in **information dissemination, education, and cultural preservation**. However, with the rise of **private media, digital platforms, and shifting audience preferences**, public broadcasters must evolve to remain relevant. To sustain their significance in the modern media landscape, they must adopt **new strategies**, including **digitization, content diversification, editorial independence, and financial sustainability**.

1. Digitization and Online Expansion

The future of public broadcasting in India largely depends on its ability to embrace **digital transformation**. As audiences increasingly turn to **on-demand content, streaming platforms, and social media for news and entertainment**, public broadcasters must **expand their digital presence**.

- Doordarshan and AIR need to **strengthen their presence on platforms like YouTube, OTT (over-the-top) services, and podcasts**.
- Developing a **dedicated streaming app** for Doordarshan's content could help engage audiences who prefer watching content on mobile devices.
- AIR should **enhance its digital radio services**, providing live streaming and podcasts for modern listeners.
  By adapting to digital media trends, public broadcasters can **compete with private media and reach younger, tech-savvy audiences**.

2. Content Diversification

Public broadcasters must **create engaging and high-quality content** that appeals to a broader audience while maintaining their **public service values**. Traditional government-centric programming may not attract modern viewers, so there is a need for:

- **Youth-oriented content**: Programs on career guidance, technology, startups, and social issues.
- **Interactive and infotainment content**: Documentaries, talk shows, and storytelling formats that blend entertainment with education.
- **Regional and hyperlocal content**: Expanding vernacular content to cater to India's diverse linguistic communities.
- **Partnerships with independent creators and filmmakers**: To improve storytelling and production quality.
  With fresh and diverse content, **Doordarshan and AIR can attract more viewers and listeners**, strengthening their relevance.

3. Strengthening Independence

One of the key challenges for public broadcasters has been **perceived political and governmental influence**. To rebuild public trust, there must be efforts to:

- Ensure **editorial independence**, allowing public broadcasters to **function as neutral platforms rather than government mouthpieces**.
- Establish an **independent regulatory framework** that prevents political interference in news and editorial decisions.
- Promote **balanced reporting and investigative journalism** to compete with private media in terms of credibility and reliability.

By strengthening editorial freedom, **Doordarshan and AIR can regain their credibility and establish themselves as trusted sources of information**.

4. Financial Sustainability

For long-term survival, public broadcasters must find ways to **reduce their dependence on government funding** and explore **alternative revenue models**. Some potential strategies include:

- **Public-Private Partnerships (PPP)**: Collaborating with private media houses or production companies for content creation and distribution.
- **Subscription-Based Services**: Launching premium ad-free digital services for high-quality educational and cultural content.
- **Corporate Sponsorships & Advertising**: Partnering with ethical advertisers while maintaining public service integrity.
- **International Collaboration**: Working with global public broadcasters like BBC or NHK for co-productions and knowledge exchange. By securing diverse funding sources, **public broadcasting in India can achieve financial stability and continue serving the public effectively**.

7. Conclusion

Public broadcasting in India continues to play an **essential role** in providing **unbiased news, education, and cultural programming** to a diverse and vast population. **Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR)** have historically served as pillars of **information dissemination, national integration, and social awareness**, particularly in rural and underserved areas. Unlike commercialized private media, which often prioritize entertainment and profit-driven content, public broadcasters have remained committed to their **public service mandate**.

Despite their continued relevance, **public broadcasters face significant challenges** in today's rapidly evolving media landscape. The rise of **private television networks, digital streaming platforms, and social media** has led to a decline in traditional viewership and listenership. Furthermore, concerns over **government influence, financial constraints, and slow technological adaptation** have raised questions about the sustainability and credibility of public broadcasting. However, these challenges also present **opportunities for transformation** and renewal.

To ensure that **public broadcasting remains effective and relevant**, three key areas must be strengthened:

1. Strengthening Independence and Editorial Integrity

One of the biggest concerns regarding **Doordarshan and AIR** is **political influence** in news coverage and programming. Public broadcasters must function as **neutral platforms**, delivering **fact-based and unbiased journalism** rather than serving as state-controlled media. To achieve this:

- **Prasar Bharati should operate with greater autonomy**, free from direct government intervention in editorial decisions.
- **Independent regulatory bodies** should be established to ensure fair and balanced reporting.
- **Public trust must be regained** through transparent journalism, investigative reporting, and diverse viewpoints.

By strengthening editorial independence, **Doordarshan and AIR can regain their credibility** and serve as reliable alternatives to **private news channels**, which are often criticized for sensationalism and corporate influence.

2. Financial Sustainability and Innovation

Public broadcasting in India continues to rely heavily on **government funding**, which limits its ability to invest in new technologies and improve content quality. To ensure long-term sustainability:

- **Alternative revenue sources** such as **public-private partnerships, corporate sponsorships, and subscription-based models** must be explored.
- **Advertising revenue** can be increased without compromising public service values by ensuring ethical partnerships.
- Investments should be made in **high-quality content and modern production techniques** to attract wider audiences and advertisers.

By adopting innovative financial models, **public broadcasters can reduce dependency on government support and maintain operational flexibility**.

3. Expanding Digital Presence and Modernizing Content

In an era where audiences are shifting to **digital platforms and mobile-based consumption**, **public broadcasters must embrace digitization** to remain competitive.

- **Doordarshan and AIR should expand their presence on YouTube, social media, and OTT platforms**, offering on-demand content.
- **AIR should develop more digital radio and podcasting services** to attract younger listeners.
- **Public broadcasters should create interactive and engaging content**, including infotainment, youth-centric programs, and documentaries with high production value.

By **modernizing content and expanding digital reach**, **Doordarshan and AIR can engage younger audiences** while continuing to serve their traditional viewers.

Despite the challenges posed by **technological advancements, financial limitations, and competition from private media**, public broadcasting in India remains a **vital institution** for **democracy, cultural preservation, and rural development**. It provides a **counterbalance to commercialized media**, ensuring that public interest remains at the forefront of broadcasting.

To secure its future, **strengthening independence, improving financial health, and embracing digital transformation** are imperative. If these reforms are implemented effectively, **public broadcasting in India can continue to thrive, evolve, and serve as a powerful medium for information, education, and national unity in the years to come**.

References

Baruah, U. L. (1983). *This is All India Radio: A handbook of radio broadcasting in India.* Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India.

Thussu, D. K. (2000). *Media and politics in India: An analysis of the role of Doordarshan in political communication*. SAGE Publications.

Prasar Bharati. (2023). *Reports and publications*. Prasar Bharati, Government of India.

Ministry of Information and Broadcasting, Government of India.

भारतीय भाषाओं में रामकथा की विविधता

कुमार विश्वमंगल* **प्रो. बीर पाल सिंह यादव†**

kmrmangal@gmail.com **bpshv20@gmail.com**

शोध सार:-

रामकथा भारतीय साहित्य और संस्कृति की आधारशिला मानी जाती है। यह कथा संस्कृत में वाल्मीकि रामायण से प्रारंभ होकर भारतीय उपमहाद्वीप की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में विभिन्न रूपों में प्रस्तुत की गई है। भारतीय भाषाओं में रामकथा की विविधता केवल भाषाई ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है।

संस्कृत में वाल्मीकि रामायण के अलावा अध्यात्म रामायण और आनंद रामायण जैसी अन्य रचनाएँ विकसित हुईं। हिंदी में तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस (1576) भक्ति रस से परिपूर्ण है, जबकि तमिल में कंबन रामायण (12वीं शताब्दी) वीर रस की प्रधानता लिए हुए है। बंगाली में कृत्तिवास रामायण (15वीं शताब्दी) लोकशैली में लिखी गई, जबकि असमिया में माधव कंदली द्वारा माधव कंदली रामायण (14वीं शताब्दी) संस्कृत वाल्मीकि रामायण का अनुवाद है। मराठी में संत एकनाथ की एकनाथी भागवत (16वीं शताब्दी) और उड़िया में दांडी रामायण रामकथा के भक्ति स्वरूप को दर्शाती है।

उत्तर-पूर्वी भारत में मैतै रामायण और अन्य मौखिक परंपराएँ भी रामकथा के अनूठे स्वरूप को प्रकट करती हैं। प्रत्येक क्षेत्र की रामकथा में सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। ए. के. रामानुजन की पुस्तक भारतीय रामकथाएँ (1991) में इन विविधताओं का विशद विश्लेषण किया गया है।

भारतीय भाषाओं में रामकथा की यह बहुरंगी प्रस्तुति इस कथा की सार्वभौमिकता और स्थानीय संस्कृति के प्रति इसकी अनुकूलन क्षमता को दर्शाती है। यह अध्ययन इस बात की पुष्टि करता है कि रामकथा केवल धार्मिक आख्यान न होकर एक जीवंत सांस्कृतिक परंपरा भी है, जो विभिन्न समुदायों को जोड़ने का कार्य करती है।

मूल शब्द:- रामकथा, विविधता, संस्कृत, भाषांतर, भक्ति, लोककथा, आख्यान, संस्कृति

---

* **पीएच.डी., शोधार्थी, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़**

† **शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़**

प्रस्तावना:-

रामकथा की मूल आधारशिला महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण मानी जाती है, जो संस्कृत भाषा में लिखी गई थी। इस महाकाव्य में भगवान राम के जीवन की विस्तार से चर्चा की गई है, जिसमें उनके जन्म, युवावस्था, वनवास, सीता हरण, रावण वध और अंततः अयोध्या लौटने तक की कथा वर्णित है। वाल्मीकि रामायण के पश्चात विभिन्न भाषाओं में रामकथा के नए-नए रूप विकसित हुए, जिससे इसकी विविधता और व्यापकता बढ़ी।

भारत में विभिन्न भाषाओं और प्रदेशों के अनुसार रामकथा के अलग-अलग संस्करण मिलते हैं। प्रत्येक संस्करण अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विशेषताओं को दर्शाता है। कहीं यह भक्ति का माध्यम बनी, तो कहीं यह वीरता और संघर्ष का प्रतीक बनी। विभिन्न भाषाओं में रामायण को नए ढंग से प्रस्तुत करने वाले कवियों और लेखकों ने अपनी दृष्टि के अनुसार इसे नया स्वरूप दिया, जिससे रामकथा केवल धार्मिक ग्रंथ न रहकर एक साहित्यिक धरोहर भी बन गई।

रामकथा भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है, जो समय के साथ विभिन्न भाषाओं और रूपों में विकसित हुई है। इसकी मूल रूपरेखा वाल्मीकि रामायण में मिलती है, जिसे संस्कृत का आदिकाव्य कहा जाता है। महर्षि वाल्मीकि ने इस महाकाव्य की रचना त्रेतायुग में घटी घटनाओं के आधार पर की। यह केवल एक धार्मिक कथा नहीं, बल्कि समाज, धर्म, राजनीति और दर्शन का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ भी है, जिसमें राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया गया है।

संस्कृत भाषा में वाल्मीकि रामायण के अलावा भी कई अन्य रामायणें रची गईं, जिन्होंने भिन्न-भिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया। जैसे, अध्यात्म रामायण (आदि शंकराचार्य द्वारा रचित) ने अद्वैत वेदांत की दृष्टि से रामकथा का वर्णन किया, जहाँ राम परमब्रह्म के प्रतीक रूप में दिखाए गए हैं। इसी प्रकार, आनंद रामायण में भक्तिरस की प्रधानता देखने को मिलती है, जहाँ राम का वर्णन उनके दिव्य गुणों के संदर्भ में किया गया है।

संस्कृत में इन रामायणों की व्यापकता के बावजूद, जब रामकथा भारतीय भाषाओं में अनूदित और रूपांतरित हुई, तो इसमें प्रत्येक क्षेत्र की स्थानीय संस्कृति, सामाजिक संरचना और परंपराओं के अनुसार नए आयाम जुड़े। विभिन्न भारतीय भाषाओं में रामकथा के अलग-अलग संस्करण लिखे गए, जो उस क्षेत्र की सांस्कृतिक और धार्मिक धारणाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में तुलसीदास कृत रामचरितमानस (1576) अवधी भाषा में लिखी गई, जो भक्ति आंदोलन से प्रभावित थी और इसमें राम को एक भक्तिपूर्ण आदर्श नायक के रूप में चित्रित किया गया। दक्षिण भारत में तमिल में कंबन रामायण (12वीं शताब्दी) लिखी गई, जिसमें वीर रस की प्रधानता है और इसे तमिल भाषा और परंपरा के अनुरूप ढाला गया।

बंगाल में कृत्तिवास रामायण (15वीं शताब्दी) लोकशैली में लिखी गई, जिसमें बंगाली समाज और वहां की सांस्कृतिक विशेषताओं को दर्शाया गया। इसी तरह, असम में माधव कंदली ने असमिया रामायण

(14वीं शताब्दी) की रचना की, जिसमें स्थानीय भाषाई शैली के साथ-साथ असम की परंपराओं का समावेश किया गया। मराठी में संत एकनाथ ने एकनाथी भागवत में रामकथा को प्रस्तुत किया, जिसमें संत परंपरा और भक्ति भावना का प्रभाव देखा जाता है। उड़िया में दांडी रामायण भी रामकथा के लोकप्रचलित संस्करणों में से एक है।

रामकथा का यह विविध रूप यह दर्शाता है कि यह केवल एक पौराणिक कथा नहीं, बल्कि भारतीय समाज की एक सांस्कृतिक धरोहर भी है, जो समय के साथ विभिन्न रूपों में ढलती रही है। जब यह कथा विभिन्न भाषाओं में अनूदित और रूपांतरित हुई, तो उसमें स्थानीय धार्मिक मान्यताओं, परंपराओं और लोक संस्कृति का समावेश हुआ, जिससे यह प्रत्येक क्षेत्र के लोगों के लिए आत्मीय बन गई।

संस्कृत में वाल्मीकि रामायण को रामकथा का आदिकाव्य माना जाता है, जिसे महर्षि वाल्मीकि ने त्रेतायुग की घटनाओं को आधार बनाकर रचा। यह महाकाव्य न केवल धार्मिक बल्कि सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके बाद संस्कृत में अध्यात्म रामायण (रचनाकार: आदि शंकराचार्य) और आनंद रामायण जैसी अन्य रचनाएँ भी प्रचलित हुईं। लेकिन जैसे-जैसे यह कथा भारतीय भाषाओं में प्रसारित हुई, उसमें स्थानीय संस्कृति और परंपराओं के अनुसार नए स्वरूप जुड़ते गए।

तुलसीदास ने रामचरितमानस में इस बात को स्पष्ट किया है कि रामकथा संपूर्ण लोक के लिए है और इसे हर युग में, हर भाषा में गाया और सुना जाना चाहिए:

"जथा अनिल जल पावक समाना।
तेहि ते अधिक राम गुण गाना॥"[1]

(बालकांड, दोहा 30 पृ. 42)

इस दोहे का अर्थ है कि जैसे वायु, जल और अग्नि सभी के लिए समान होते हैं, वैसे ही श्रीराम के गुणों का गान भी सभी भाषाओं और समुदायों के लिए समान रूप से उपयोगी है। तुलसीदास यहाँ यह संकेत करते हैं कि रामकथा किसी एक भाषा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समय और स्थान के अनुसार अलग-अलग रूपों में प्रसारित होती रहती है।

भारतीय भाषाओं में रामकथा के प्रसार के साथ उसमें स्थानीय संस्कृतियों के अनुरूप बदलाव होते गए। हिंदी में रामचरितमानस, तमिल में कंबन रामायण, बंगाली में कृत्तिवास रामायण, असमिया में माधव कंदली रामायण जैसे अनेक रूपों में इसे प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार, संस्कृत से लेकर भारतीय भाषाओं तक रामकथा ने व्यापक लोक स्वीकृति प्राप्त की और भक्ति, नीति तथा सांस्कृतिक विविधता का प्रतीक बनी। तुलसीदास ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा:-

"जग बिदित राम चरित सब काहू।
संत हृदय सरस इति चाहू॥"[2]

(बालकांड, दोहा 27 पृ. 40)

इसका अर्थ है कि रामकथा पूरे विश्व में प्रसिद्ध है और संतों के हृदय में यह विशेष रूप से प्रेम और भक्ति का स्रोत बनी रहती है। रामकथा न केवल धार्मिक ग्रंथों तक सीमित रही, बल्कि यह लोककथाओं, नाटकों और काव्य परंपराओं में भी जीवंत बनी रही। रामकथा के विभिन्न संस्करणों में सामाजिक मूल्यों, धार्मिक आस्थाओं और सांस्कृतिक विशेषताओं का अद्भुत समावेश देखने को मिलता है। कंबन रामायण में तमिल वीरता का प्रभाव दिखता है, तो कृत्तिवास रामायण बंगाल की लोकभाषा शैली को अपनाकर आम जनता तक पहुँचती है।

भारतीय भाषाओं में रामकथा की विविधता इस बात का प्रमाण है कि यह कथा केवल एक धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक धरोहर है। जैसे-जैसे यह कथा विभिन्न भाषाओं में अनुवादित हुई, उसमें स्थानीय रंग और परंपराओं का समावेश हुआ, जिससे यह अधिक व्यापक और लोकप्रिय बनी। तुलसीदास की यह उक्ति इस विविधता को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करती है:

"राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।

तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजियार।।"[3]

(उत्तरकांड, दोहा 108 पृ. 824)

अर्थात, रामकथा एक ऐसा दीपक है, जो सभी दिशाओं में प्रकाश फैलाता है। भारतीय भाषाओं में रामकथा के विभिन्न रूप इसी प्रकाश की भाँति अलग-अलग समाजों और संस्कृतियों को प्रकाशित करते हैं, जिससे रामकथा केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक चेतना का जीवंत प्रतीक बन जाती है।

हिंदी साहित्य में रामकथा का सबसे लोकप्रिय और प्रतिष्ठित रूप गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस (1576) में मिलता है। यह ग्रंथ अवधी भाषा में लिखा गया है और भक्ति रस से ओत-प्रोत है। तुलसीदास ने इसमें श्रीराम को "मर्यादा पुरुषोत्तम" के रूप में चित्रित किया, जो धर्म, करुणा और आदर्श जीवन के प्रतीक हैं। रामचरितमानस केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक धरोहर भी है, जिसने भक्ति आंदोलन को गहराई से प्रभावित किया। इस ग्रंथ की विशेषता इसकी सरल भाषा, काव्यात्मक सौंदर्य और लोकग्राह्यता है, जिसके कारण यह उत्तर भारत में व्यापक रूप से पढ़ा, सुना और गाया जाता है। तुलसीदास ने भक्ति को केंद्र में रखते हुए राम को लोकनायक के रूप में प्रस्तुत किया। वे कहते हैं—

"बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।"[4]

(बालकांड, दोहा 3 पृ. 45)

इस दोहे में तुलसीदास मानव जीवन को अत्यंत दुर्लभ और पुण्य का फल बताते हैं, जिसका सर्वोत्तम उपयोग भगवान राम की भक्ति में है। इसी विचारधारा ने रामचरितमानस को भक्ति आंदोलन से जोड़ा और इसे जनमानस तक पहुँचाया।

इस ग्रंथ में राम को केवल एक योद्धा या राजा के रूप में नहीं, बल्कि एक आदर्श पुत्र, आदर्श पति, आदर्श भाई और आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है। तुलसीदास के शब्दों में:

"रामहि केवल प्रेमु पियारा।

जानि लेहु जो जाननिहारा॥"[5]

(अयोध्याकांड, दोहा 120 पृ. 232)

अर्थात, भगवान राम केवल प्रेम के भूखे हैं, और जो इसे समझते हैं, वही सच्चा भक्त है। यह दोहा भक्ति की उस धारा को दर्शाता है, जिसने उत्तर भारत में रामकथा को जन-जन तक पहुँचाया।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस ने न केवल धार्मिक चेतना को जाग्रत किया, बल्कि हिंदी साहित्य, संगीत और लोककला को भी समृद्ध किया। यही कारण है कि यह ग्रंथ आज भी करोड़ों भक्तों के लिए श्रद्धा और आस्था का केंद्र बना हुआ है।

दक्षिण भारत में रामकथा की कई भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं, जो वहाँ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भाषाई विविधता और लोक परंपराओं के अनुसार विकसित हुई हैं। तमिल भाषा में कंबन रामायण (12वीं शताब्दी) विशेष रूप से प्रसिद्ध है, जिसे कवि कंबन ने लिखा। इसमें भगवान राम को एक पराक्रमी योद्धा और आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया गया है। कंबन ने इस महाकाव्य को अपनी क्षेत्रीय शैली और धार्मिक भावनाओं के अनुरूप ढालते हुए तमिल जनमानस के अनुरूप बनाया।

कन्नड़ भाषा में कुमुदेन्दु रामायण (13वीं शताब्दी) और तोरवे रामायण भी महत्वपूर्ण हैं। मलयालम में आट्टक्कथा रामायण लोकनाट्य शैली में प्रचलित है, जिसमें कथकली नृत्य नाटक के रूप में रामकथा का मंचन किया जाता है। तेलुगु में रघुनाथ भूपाल रामायण और रंगनाथ रामायण ने तेलुगु भाषी क्षेत्रों में रामकथा को व्यापक लोकप्रियता दिलाई।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भगवान राम की महिमा और उनके गुणों का उल्लेख मिलता है, जो दक्षिण भारतीय रामकथाओं की भावना से मेल खाता है। तुलसीदास ने राम को एक मर्यादा पुरुषोत्तम और करुणामयी राजा के रूप में चित्रित किया है, जैसा कि निम्नलिखित दोहे में वर्णित है—

"प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही।

मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥"[6]

(अयोध्याकांड, दोहा 94 पृ.: 234)

इस दोहे में राम की मर्यादा और उनके द्वारा स्थापित नैतिक मूल्यों को दर्शाया गया है, जो दक्षिण भारतीय रामायणों में भी देखने को मिलते हैं। कंबन रामायण से लेकर तेलुगु और मलयालम रामायण तक, हर भाषा और परंपरा ने राम के इस रूप को अपने तरीके से परिभाषित किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण

भारत की रामकथा न केवल धार्मिक ग्रंथों की व्याख्या है, बल्कि वहां की संस्कृति, कला और परंपराओं का भी अभिन्न हिस्सा है।

पूर्वी भारत में रामकथा का अद्वितीय विकास हुआ है, जहाँ यह कथा विभिन्न भाषाओं और लोकसंस्कृतियों में अलग-अलग रूपों में प्रचलित है। बंगाली में कृत्तिवास ओझा द्वारा रचित कृत्तिवास रामायण (15वीं शताब्दी) अत्यंत लोकप्रिय है। यह रामकथा का एक काव्यात्मक संस्करण है, जिसमें बंगाली लोकजीवन की झलक मिलती है। इसी प्रकार, असमिया भाषा में माधव कंदली ने माधव कंदली रामायण (14वीं शताब्दी) की रचना की, जो वाल्मीकि रामायण का ही अनुवाद है और असमिया साहित्य की पहली महाकाव्य रचनाओं में से एक मानी जाती है। उड़िया भाषा में बालराम दास द्वारा रचित दांडी रामायण ओडिशा के भक्ति आंदोलन से जुड़ी हुई है, जिसमें रामकथा को सहज और सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है ताकि आम जनता इसे आत्मसात कर सके।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी रामकथा के क्षेत्रीय रूपों की स्वीकृति दिखाई देती है। तुलसीदास ने रामकथा को लोकमानस में स्थान देने के लिए कहा है:

"जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥"[7]

(रामचरितमानस, अयोध्या कांड पृ. 237)

इस दोहे का आशय यह है कि हर व्यक्ति अपनी श्रद्धा, संस्कृति और दृष्टिकोण के अनुसार भगवान राम का स्वरूप देखता और समझता है। यही कारण है कि पूर्वी भारत में रामकथा ने वहाँ की भाषाई और सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाकर अपना विशिष्ट स्वरूप प्राप्त किया।

पूर्वी भारत की रामकथाएँ लोकसंस्कृति से गहराई से जुड़ी हैं और ये स्थानीय धार्मिक आंदोलनों, लोककथाओं एवं भक्ति परंपराओं से प्रभावित हैं। इस क्षेत्र की रामकथाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि किस प्रकार भक्ति काल में रामकथा का व्यापक प्रसार हुआ और यह कथा केवल धार्मिक ग्रंथ न रहकर जनमानस की सांस्कृतिक धरोहर बन गई।

पश्चिमी भारत में रामकथा की अपनी विशिष्ट परंपरा रही है। मराठी संत साहित्य में रामकथा को भक्ति रस के साथ प्रस्तुत किया गया, जिसमें संत एकनाथ (16वीं शताब्दी) द्वारा रचित एकनाथी भागवत विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में रामचरित का वर्णन भक्तिपूर्ण दृष्टिकोण से किया गया है, जिसमें रामराज्य की आदर्श स्थापना और नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया है। इसी प्रकार, गुजराती साहित्य में भी कई रामायण कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें लोकगीतों और कथा-काव्य के माध्यम से रामकथा का प्रसार हुआ।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भक्ति को सबसे प्रमुख स्थान दिया गया है, जो संत एकनाथ और अन्य भक्त कवियों के विचारों से मेल खाता है। तुलसीदास ने भक्ति की महिमा का वर्णन इन पंक्तियों में किया है—

"बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥"[8]
(रामचरितमानस, अयोध्या कांड, दोहा 218 पृ. 356)

इस दोहे के अनुसार, सत्संग (अच्छे संगति) के बिना विवेक (सत्य की पहचान) प्राप्त नहीं होती और राम की कृपा के बिना यह संभव नहीं है। संत एकनाथ और गुजराती रामकथाओं में भी इसी विचारधारा को अभिव्यक्त किया गया है, जहाँ रामकथा को भक्ति मार्ग के साधन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

पश्चिमी भारत की रामकथाएँ न केवल राम के जीवन को गाथाओं के रूप में प्रस्तुत करती हैं, बल्कि इनमें नैतिक शिक्षा और भक्ति की गहन भावना भी निहित रहती है, जो तुलसीदास के दृष्टिकोण से पूर्णतः संगत है।

उत्तर-पूर्वी भारत में रामकथा की अनूठी व्याख्याएँ देखने को मिलती हैं। यहाँ की स्थानीय भाषाओं और जनजातीय परंपराओं में रामकथा को विभिन्न रूपों में अपनाया गया है। मणिपुरी भाषा में मैतै रामायण लोकप्रिय है, जो इस क्षेत्र की सांस्कृतिक एवं धार्मिक मान्यताओं के अनुसार रामकथा का लोकनाट्य रूप प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार, खासी एवं नागा जनजातियों में भी रामकथा मौखिक परंपरा के रूप में विद्यमान है, जहाँ इसे लोकगीतों, गाथाओं और नाटकों के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाया गया है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में रामकथा की व्यापकता और उसकी लोकप्रियता का वर्णन इस दोहे में मिलता है—

"जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥"[9]
(रामचरितमानस, अयोध्याकांड, दोहा 131 पृ.: 256)

इस दोहे का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रद्धा और भावना के अनुसार भगवान राम को देखता और समझता है। यही बात उत्तर-पूर्वी भारत की रामकथाओं पर भी लागू होती है, जहाँ स्थानीय मान्यताओं और सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार रामकथा को नए संदर्भों में ढाला गया है।

उत्तर-पूर्व की रामकथा विविधता में एकता की भावना को दर्शाती है, जहाँ भले ही कथा के स्वरूप भिन्न हों, लेकिन आदर्श, नैतिकता और धर्म के मूल तत्व समान रूप से विद्यमान रहते हैं। यह दर्शाता है कि रामकथा केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक धरोहर भी है, जो समय और समाज के अनुरूप स्वयं को ढालती रहती है।

रामकथा भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग है, जो समय के साथ विभिन्न भाषाओं और परंपराओं में विकसित होती रही है। पुस्तक भारतीय रामकथाएँ (लेखक: ए. के. रामानुजन, प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रकाशन वर्ष: 1991 पृ.: 328) में इस विविधता का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया

गया है। इस पुस्तक में बताया गया है कि कैसे विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों ने रामकथा को अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों के अनुरूप ढालकर प्रस्तुत किया।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी इस विविधता और रामकथा के सार्वभौमिक महत्व को दर्शाया गया है। तुलसीदास ने लिखा:-

"बरनउँ रामचरित मानस।
सुनत सादर हृदय अगनस।।"[10]
(बालकांड, दोहा 30 पृ.: 45)

अर्थात, मैं रामचरितमानस का वर्णन करता हूँ, जिसे श्रद्धा से सुनने पर हृदय के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। यह दोहा रामकथा की व्यापकता और उसके सभी समाजों के लिए महत्व को दर्शाता है।

रामचरितमानस की तरह, तमिल में कंबन रामायण, बंगाली में कृत्तिवास रामायण, असमिया में माधव कंदली रामायण, और मराठी में एकनाथी भागवत जैसी रचनाएँ रामकथा को भिन्न रूपों में प्रस्तुत करती हैं। तुलसीदास की भक्ति प्रधान व्याख्या जहां भक्तिरस से परिपूर्ण है, वहीं दक्षिण भारतीय रामायणों में वीर रस और भक्ति का मिश्रण मिलता है।

भारतीय रामकथाएँ पुस्तक और रामचरितमानस दोनों इस बात को प्रमाणित करते हैं कि रामकथा केवल एक धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय समाज की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक धरोहर है, जो विविध भाषाओं और परंपराओं में विकसित होकर भी अपनी मूल भावना को बनाए रखती है।

रामकथा भारतीय संस्कृति में अनेक रूपों में प्रचलित है। विभिन्न भाषाओं और भौगोलिक क्षेत्रों में यह कथा अलग-अलग दृष्टिकोणों से प्रस्तुत की गई है। तुलसीदास कृत रामचरितमानस इस विविधता को भक्ति, वीरता, नैतिकता और लोकजीवन के संदर्भ में उत्कृष्ट रूप से प्रस्तुत करता है।

भक्ति प्रधान रामकथा

भक्ति रस में लिखी गई रामकथाएँ भगवान राम को साकार ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उत्तर भारत में रामचरितमानस, दक्षिण भारत में कंबन रामायण और ओडिशा में दांडी रामायण इसी परंपरा का हिस्सा हैं। तुलसीदास ने राम को भक्ति और करुणा का प्रतीक बताते हुए लिखा—

"राम सच्चिदानंद दिनेसा।
करुनासिंधु सुंदर सुरेसा।।"[11]
(अयोध्याकांड, दोहा 102 पृ. 235)

अर्थात, राम सच्चिदानंद स्वरूप हैं, करुणा के सागर और देवताओं के भी स्वामी हैं। यह भक्ति भावना रामचरितमानस में व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती है।

वीरता प्रधान रामकथा

कुछ रामायणों में भगवान राम को एक पराक्रमी योद्धा के रूप में दर्शाया गया है। तमिल के कंबन रामायण में राम की वीरता और शक्ति का विशेष वर्णन है। तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में राम की वीरता का उल्लेख करते हुए कहा—

"भय बिनु होइ न प्रीति।"[12]

(सुंदरकांड, दोहा 21 पृ. 482)

यहाँ पर राम की शक्ति और उनकी रणकुशलता को स्पष्ट किया गया है कि निडर और शक्तिशाली शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए साहस आवश्यक है।

नैतिकता और नीति प्रधान रामकथा

रामकथा का एक महत्वपूर्ण पक्ष नैतिकता और नीति भी है। रामचरितमानस में राम आदर्श राजा, पुत्र, पति और भाई के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। तुलसीदास लिखते हैं—

"बरु अनीति रहुं रघुकुल ताता।
परहित बस जिनके मन माहीं।।"[13]

(अयोध्याकांड, दोहा 94 पृ. 226)

अर्थात, राम अधर्म को सहन नहीं कर सकते और सदैव दूसरों के कल्याण के लिए तत्पर रहते हैं। यह नीति प्रधानता रामकथा की सार्वभौमिकता को दर्शाती है।

लोक और जनजातीय रामकथा

कई आदिवासी और लोक समुदायों में रामकथा के मौखिक संस्करण पाए जाते हैं, जो उनके लोकजीवन और सांस्कृतिक विशेषताओं को दर्शाते हैं। रामचरितमानस में भी यह भाव झलकता है—

"रामहि केवल प्रेमु पियारा।
जानि लेउ जो जाननिहारा।।"[14]

(बालकांड, दोहा 25 पृ. 88)

इस पंक्ति में तुलसीदास ने स्पष्ट किया कि राम सभी के लिए हैं, चाहे वे किसी भी वर्ग, जाति या समुदाय से हों। इसी भावना को आदिवासी और लोक रामायणों में भी देखा जा सकता है।

निष्कर्ष:-

भारतीय भाषाओं में रामकथा की विविधता इस बात का प्रमाण है कि यह केवल एक धार्मिक आख्यान न होकर सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक रूप से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। संस्कृत में वाल्मीकि रामायण इसकी मूल कृति मानी जाती है, किंतु विभिन्न भारतीय भाषाओं में इसके भिन्न-भिन्न संस्करण विकसित हुए। हिंदी में तुलसीदास कृत रामचरितमानस भक्ति रस में लिखी गई, जबकि तमिल में

कंबन की कंबन रामायण वीरता प्रधान है। बंगाली में कृत्तिवास रामायण लोकशैली में रचित है, तो असमिया में माधव कंदली की असमिया रामायण संस्कृत वाल्मीकि रामायण का अनुवाद है। उड़िया में दांडी रामायण और मराठी में संत एकनाथ की एकनाथी भागवत भक्ति रस प्रधान रामकथाएँ हैं। कन्नड़, तेलुगु, मलयालम, पंजाबी, गुजराती और अन्य भाषाओं में भी रामकथा के विभिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं।

दक्षिण भारतीय रामायणों में संस्कृत के प्रभाव के साथ-साथ स्थानीय संस्कृति का समावेश दिखता है, जबकि उत्तर भारत में रामचरितमानस ने भक्ति आंदोलन को मजबूती प्रदान की। पूर्वी भारत की रामकथाएँ लोककथाओं से प्रभावित हैं, जहाँ कथा अधिक सरल भाषा में प्रस्तुत की गई है। पश्चिमी भारत में रामायण के जैन और संत परंपरा से प्रभावित संस्करण मिलते हैं। उत्तर-पूर्व भारत की मैतै रामायण और नागा, मिज़ो, संथाल तथा भील समुदायों की मौखिक रामकथाएँ स्थानीय जनजातीय संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। रामकथा का वैश्विक प्रभाव भी देखा जाता है, जिसमें इंडोनेशिया, थाईलैंड, लाओस, कंबोडिया और श्रीलंका में इसके अनूठे रूप विकसित हुए।

रामकथा केवल धार्मिक ग्रंथ न होकर नीति, आदर्श, सामाजिक मूल्यों और लोकपरंपराओं का प्रतिबिंब भी है। इसका हर संस्करण स्थानीय परंपराओं और संस्कृतियों से प्रभावित रहा है। बौद्ध दशरथ जातक और जैन पउमचरियं रामायण इसके भिन्न दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। भारतीय भाषाओं में रामकथा की यह बहुरंगी प्रस्तुति इसकी सार्वभौमिकता और अनुकूलनशीलता को दर्शाती है, जिससे यह विभिन्न समुदायों में अपनी अलग पहचान बना सकी है। इस प्रकार, रामकथा केवल एक कथा नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक एकता और विविधता का प्रतीक है, जो विभिन्न भाषाओं, परंपराओं और संस्कृतियों को जोड़ने का कार्य करती है।

संदर्भ :-

1. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. बालकांड, दोहा 30. पृ. 42

2. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. बालकांड, दोहा 27. पृ. 40

3. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. उत्तरकांड, दोहा 108. पृ. 824

4. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. बालकांड, दोहा 3. पृ. 45

5. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. अयोध्याकांड, दोहा 120. पृ. 232

6. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. अयोध्याकांड, दोहा 94. पृ.: 234

7. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. रामचरितमानस. अयोध्या कांड. पृ. 237

8. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. रामचरितमानस. अयोध्या कांड, दोहा 218. पृ. 356

9 तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. बालकांड, दोहा 30. पृ.:45

10. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. बालकांड, दोहा 30. पृ. 45

11. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. अयोध्याकांड, दोहा 102. पृ. 235

12. तुलसीदास, गोस्वामी. *रामचरितमानस*. सुंदरकांड, दोहा 21. पृ. 482

संताल हुल : कारण और परिणाम

डॉ. अजय सिन्हा* **डॉ. दीपक कुमार कोठरीवाल†**

dr.ajoysinha@gmail.com **kothriwal007@gmail.com**

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अलग-अलग संघर्षों, संग्रामों और अलग-अलग घटनाओं की अपनी प्रेरणाएँ और संदेश हैं। हमारे स्वतंत्रता संग्राम में ऐसे अनेक आंदोलन और संघर्ष है जो इतिहास में उस रूप में दर्ज नहीं हो सके जैसे होने चाहिए। ये एक-एक संग्राम और संघर्ष भारत के स्वाधीन स्वभाव के सबूत हैं। ये संग्राम इस बात का भी साक्षात प्रमाण है की अन्याय, शोषण और हिंसा के खिलाफ भारत की जो चेतना राम के युग में थी, महाभारत के कुरुक्षेत्र में थी, हल्दीघाटी की रणभूमि में थी, शिवाजी के उद्घोष में थी, वही शाश्वत चेतना, वहीं अदम्य शौर्य, भारत के हर क्षेत्र, हर वर्ग और हर समाज ने स्वतंत्रता की लड़ाई में अपने भीतर प्रज्वलित कर रखा था। हमारे देश के आदिवासी समाज ने अपनी वीरता और पराक्रम से लगातार विदेशी हुकूमत को घुटने पर लाने का काम किया। झारखंड के तिलका माँझी, सिदो कान्हू, चाँद भैरव, भगवान बिरसा मुडा, भगीरथ माँझी जैसे अनेक नायकों ने अंग्रेजों को चुनौती दी। ओडिशा में चक्रा बिसोई ने लड़ाई छेड़ी तो लक्ष्मण नायक ने गांधीवादी तरीके से चेतना फैलाई, आंध्र प्रदेश के मध्यम विरूड्यू यानी जंगलों के हीरो राजू ने रम्पा आंदोलन का बिगुल फूंका, पासलथा खुंगचेरा ने मिजोरम की पहाड़ियों में अंग्रेजों से लोहा लिया बोर फुकन और सीरत सिंग जैसे असम और पूर्वात्तर के अनेक स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने देश की आजादी में योगदान दिया। मानगढ़ में गोविंद गुरु के नेतृत्व में स्वतंत्रता की लड़ाई में सैंकड़ों आदिवासियों का नरसंहार हुआ। देश इनके बलिदान को सदा याद रखेगा।

पृष्ठभूमि

आधुनिक भारत के इतिहास में मुगल साम्राज्य का पतन और ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का उत्कर्ष समानांतर घटनाएँ है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से काफी पहले से वर्तमान झारखण्ड राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजी इस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ छिट-पुट बगावत और संघर्ष शुरू हो गया था। यह संघर्ष आपस में एक दूसरे से जुड़ा नहीं था लेकिन फिर भी 1857 की लड़ाई में इसने महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि बनाई।

---

* **सहायक प्राध्यापक, पीजी डिपार्टमेंट ऑफ पोलिटिकल साइंस, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका**

(यह शोध आलेख ICSSR के Minor Project के संदर्भ में प्रकाशित है।)

† **सहायक प्राध्यापक & विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, सेंट जेवियर्स कॉलेज (एस. के. एम. यू.) महारो दुमका, झारखंड**

पलासी और बक्सर की लड़ाई में हार के बाद मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय ने अंग्रेजों के साथ 1765 में इलाहाबाद की संधि की और बिहार, बंगाल और ओडिसा का दीवानी अधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी को दे दिया इस संधि का झारखण्ड पर गंभीर प्रभाव पड़ा। बंगाल के नबाब और सामंतों से अलग झारखण्ड के सामंत काफी स्वतंत्र थे और उनकी अपनी सेना थी और अपना न्याय व्यवस्था था। वो अपनी इच्छा और मर्जी से मुगल बादशाह को लगान देते थे। जब कंपनी के हाथों में दीवानी अधिकार आ गया तब उन्होंने 1767 से अपनी सेना की मदद से लगान वसूलना शुरू कर दिया। ईस्ट इंडिया की स्थायी बंदोबस्त व्यवस्था ने अधिक से अधिक भूमि को कृषि कार्य के लिये इस्तेमाल करने का प्रयास शुरू हुआ जिसके लिए झारखंड के जंगलों को साफ़ और समतल कर कृषि योग्य बनाना आवश्यक था। वर्तमान झारखंड के संताल परगना में ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने जमींदारों की मदद से यह प्रयास किया कि यहाँ रहने वाले पहाड़ियों को पहाड़ से नीचे लाकर उन्हें खेती के लिये प्रेरित किया जाये लेकिन पहाड़िया जनजाति में इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई। संतालों का अतीत मातृभूमि की खोज में भटकने की कथा है। उनकी पारंपरिक किंवदंतियाँ और गीत उनके एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रवास की कहानी कहते हैं। एक स्थायी घर की लंबी खोज उन्हें अंततः उनके वर्तमान निवास, संताल परगना तक पहुंचाती है। आदिवासियों में संताल जनजाति कृषि कार्य में काफ़ी कुशल मानी जाती है। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने जमींदारों के मदद से उन्हें वर्तमान संताल परगना में नियोजित तरीके से बसाने की योजना बनाई संतालों ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और यहाँ के जमीन को कृषि योग्य बना दिया। आहिस्ता-आहिस्ता इस क्षेत्र में संतालों की जनसंख्या और उनके भू-भाग बढ़ने लगे और वे इस भूमि पर कृषकों के रूप में बसने लगे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने संतालों के रह रहे क्षेत्र को दामिन-ए-कोह के रूप में चिन्हित कर दिया। दामिन-ए-कोह में संतालों के गाँव और उनकी जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगी, और 1838 में 40 गाँव और 3000 की जनसंख्या से 1851 में उनके गाँव कि संख्या 1473 और जनसंख्या 82000 हो गई। प्रारंभिक समय से उनसे कोई लगान नहीं लिया जाता था और वे ईस्ट इंडिया कंपनी और जमींदारों के समर्थक थे।

हुल के कारण:-

आर्थिक कारण :-

जल्द ही संतालों को ईस्ट इंडिया कंपनी और उनके जमींदारों के शोषण का शिकार होना पड़ गया। लगान की रकम 1838 में 2000 रु. थे, जो 1851 में बढ़कर 45000 रु. हो गये इसके अलावा लगान वसूलने वाले संतालों से अपनी अतिरिक्त आमदनी के लिए अलग से वसूली करते थे जिससे उनपर दोहरा बोझ पड़ने लगा। अंग्रेजी हुकूमत द्वारा लगातार बढ़ती लगान वसूली संतालों के बीच असंतोष का प्रमुख कारण बना, वीर भारत तलवार लिखते हैं कि "ब्रिटिश प्रशासन की दिलचस्पी संतालों से सिर्फ लगान वसूलने में थी। हालाँकि ईस्ट इंडिया कंपनी एक व्यापारिक कंपनी थी लेकिन उसके आय का मुख्य स्रोत लगान था इतना लगान वसूलने के बाद भी कंपनी का प्रशासन, पुलिस और कानून सूदखोर, महाजनों और जमींदारों के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता था। वास्तव में कंपनी सारे शोषण तंत्र का नेतृत्व करती थी।"

संताल परगना में बसने के बाद संताल औपनिवेशिक शोषण में फँसते चले गए। संतालों ने जंगलों को काटकर कृषि योग्य जमीन तैयार की। जल्द ही पश्चिम बंगाल के बर्दवान और बीरभूम के आस-पास के क्षेत्रों और बिहार के आरा, छपरा, बेतिया और शाहाबाद जिलों के व्यापारी और महाजन (साहूकार) भी इस क्षेत्र में आकर बसने लगे। ये महाजन और व्यापारी संतालों से उनकी उपज खरीदते और उन्हें कलकत्ते में बेचते। बदले में संतालों को पैसे, नमक, तंबाकू और कपड़े के रूप में भुगतान किया जाता था। इस व्यावसायिक लेन-देन के दौरान भोले-भाले संताल महाजनों और व्यापारियों के छल-कपट और चालाकी से रूबरू हुए। संतालों को जो पैसा दिया जाता था या बदले में जो सामान भी दिया जाता था, वह उनसे खरीदी गई वास्तविक उपज से बहुत कम हुआ करता था। महाजनों और व्यापारियों ने तराजू के दो अलग-अलग सेटों के उपयोग के माध्यम से संतालों को धोखा दिया केनाराम या बड़ा बाट वह पैमाना था जिसका वजन वास्तविक माप से थोड़ा अधिक होता था और इसका उपयोग उन फसलों को तौलने के लिए किया जाता था जो वे वहां से खरीदते थे। देनाराम या छोटा बाट वह पैमाना था जिसका वजन वास्तविक माप से कम होता था और इसका इस्तेमाल संतालों को बेची या उधार दी गई वस्तुओं को तौलने के लिए किया जाता था। इस तरह संतालों को छला गया और महाजनों और व्यापारियों ने अपार धन इकट्ठा किया। महाजन संतालों को कुछ रुपये भी उधार दिया करते थे और फसल के मौसम के दौरान वे उधार दिए गए धन या वस्तु को एकत्र करते थे। यह भी पूरी चालबाजी के साथ किया जाता था। विद्रोह का व्यापक अध्ययन करने वाले पहले और एकमात्र इतिहासकार, कलिकिंकर दत्ता (1940) बताते हैं।

"उन्होंने (व्यापारी और महाजन) रास्ते में एक पत्थर उठाया और अपने वजन की शुद्धता दिखाने के लिए इसे सिंदूर से रंग दिया, अपने देनदारों के खेतों में पहुंचे, जिन्हें तब अपने लेनदारों की पार्टियों के आने-जाने के खर्चों को भी चुकाना होता था। उक्त पत्थर के टुकड़े की मदद से वजन करके, महाजनों ने अपने देनदारों से उनकी भूमि की लगभग पूरी उपज को ले लिया, फिर भी उन्हें कर्ज के बोझ से दबा दिया।"

अपने लेनदारों के टेंढ़े-मेढ़े तरीकों से अनभिज्ञ, सरल दिमाग वाले संताल जाल में फंसते गये, कर्ज की लेन-देन और ब्याज की दरों का लिखित रिकॉर्ड रखना जरूरी है, ऐसा संताल जानते भी नहीं थे। जब महाजन अत्यधिक मांगों के साथ पहुंचते तो संतालों के पास उत्तर नहीं होता था। संताल भुगतान करने में हमेशा नाकाम होते और इस प्रकार पूरी फसल, मवेशी, बर्तन और यहां तक कि महिलाओं के लोहे के गहने भी छीन लिए जाते। संतालों को देनदार के बंधुआ मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर होना होता और यह पीढ़ियों तक जारी रहता। इस व्यवस्था को 'कमियोती' के नाम से जाना जाता था। उत्पीड़ित संतालों को पुलिस अधिकारियों से कभी कोई राहत नहीं मिली क्योंकि वे व्यापारियों और महाजनों के साथ होते। संतालों के लिए न्यायपालिका और अदालतें बहुत दूर थी। मजिस्ट्रेट भागलपुर में बैठते थे और केवल एक ही स्थानीय मजिस्ट्रेट था जिसे देवघर में रखा गया था, जो कि 70 किलोमीटर से अधिक दूर था एक ऐसा फासला जो उन दिनों के पिछडे संचार व्यवस्था में अनजान परदेस सा था। डब्ल्यू डब्ल्यू हंटर (1868) नामक एक ब्रिटिश प्रशासक लिखते हैं।

"समाधान का सवाल ही नहीं था अदालत शायद सौ मील दूर सिविल स्टेशन में बैठी थी। राजस्व के संग्रह में तल्लीन अंग्रेज न्यायाधीश के पास अपने लोगों की छोटी-छोटी शिकायतों के लिए समय नहीं था। देशी मातहतों ने, सभी ने, उत्पीड़क से अपनी तनख्वाह ली थी, पुलिस ने लूट में हिस्सा लिया था। संतालों ने कहा, 'ईश्वर महान है, लेकिन वह बहुत दूर है।"

इस प्रकार, औपनिवेशिक शासन के तहत संताल आजीविका के संकट से गुजर रहे थे। जीवित रहने के अपने पारंपरिक साधनों से वंचित उनमें से कई को रेलवे निर्माण स्थलों में मजदूरों के रूप में काम करना पड़ा, जहां यूरोपीय लोगों द्वारा संताल महिलाओं और बच्चों का जबरन अपहरण कर लिया जाता, जिससे संतालों की परेशानी बढ़ गई।

धार्मिक कारणः-

इन आर्थिक कारणों के अलावे हुल के पीछे धार्मिक कारण भी थे। 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा ईसाई मिशनरियों को भारत में ईसाई धर्म के प्रचार प्रशार की इजाजत दी। ये ईसाई मिशन भारत के अन्य हिस्से के अलावा संतालों की बस्तियों में भी प्रवेश करने लगे और हाट में जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करने लगे। संताल जनजाति बहुत ही सरल स्वाभाव की जनजाति मानी जाती है। इन्हें अपने परंपरा और धार्मिक विश्वासों पर गहरी आस्था होती है, उन्हें ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों से अपनी आस्था और विश्वास पर खतरा महसूस होने लगा और अंदर ही अंदर वे इससे नाराज होने लगे। संताल परगना के इतिहासकार डी सुरेंद्र झा के अनुसार "धर्मांतरण करने वालों को संताल परिवार से अलग कर देते थे। इससे स्पष्ट होता है की संताल ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलापों को अपनी संस्कृति और पहचान के लिए खतरा समझते थे।"

समाजिक कारणः-

संताल हुल के पीछे उनके सामाजिक व्यवस्था पर अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे प्रहार भी थे। अंग्रेजों ने उनकी पारंपरिक माँझी व्यवस्था और परगनैत पंचायत व्यवस्था के स्थान पर अंग्रेजी कानून थोप दिये। इनके नष्ट होने से संतालों को अपने गाँव में जो खुद निर्णय लेने की स्थिति थी, वो समाप्त हो गई. इससे उनके सामाजिक और राजनीतिक हैसियत में हास होना शुरू हो गया।

अंग्रेजी कानून और शोषणकारी नीतिः-

अंग्रेजों ने दामिन-ए-कोह में संतालों को बसाने के बाद धीरे-धीरे अपनी प्रशासनिक और कानूनी व्यवस्था लागू की। इसमें जमीन के स्वामित्व, कर संग्रह, और व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार जैसे नए सिद्धांत पेश किए गए, जो संतालों की सामुदायिक जीवनशैली से बिल्कुल अलग थे। अंग्रेजों ने महाजनों और जमींदारों को कर-संग्रह का जिम्मा सौंपा, जिससे संतालों का आर्थिक शोषण शुरू हुआ। अंग्रे संतालों का परंपरागत शासन सामुदायिक और जनजातीय व्यवस्था पर आधारित था, जिसमें ग्राम सभाएं और स्थानीय नेता (जैसे माझी या परगनैत) महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वह व्यवस्था मौखिक परंपराओं, सामूहिक निर्णयों और

प्राकृतिक संसाधनों के संयुक्त उपयोग पर टिकी थी। अंग्रेजी कानून और शोषणकारी नीतियों भी हुल का एक प्रमुख कारण बना।

ब्रिटिश काल में रेलवे का विस्तार भारत में औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों का एक प्रमुख हिस्सा था। पहली रेलवे लाइन 1853 में शुरू हुई, और इसके बाद पूर्वी भारत, जिसमें संताल क्षेत्र शामिल थे, में रेल नेटवर्क का तेजी से बिस्तार हुआ। रेलवे निर्माण के लिए बड़े पैमाने पर श्रमिकों की जरूरत थी, और इसमें स्थानीय आदिवासी समुदायों, जैसे संताल, को जबरन या कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया गया। संताल हुल से ठीक पहले और उसके दौरान, ब्रिटिश प्रशासन ने संताल क्षेत्रों में अपनी पकड़ मजबूत करने और संसाधनों का दोहन करने के लिए बुनियादी ढांचे, जैसे रेलवे, पर ध्यान देना शुरू किया था। संताल समाज में महिलाएँ पारंपरिक रूप से खेती, जंगल से संसाधन जुटाने, और घरेलू कार्यों में सक्रिय रही हैं। रेलवे निर्माण जैसे बड़े पैमाने के औपनिवेशिक प्रोजेक्ट्स में संताल पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं को भी श्रमिक के रूप में शामिल किया गया। इन कार्यों में महिलाओं को कई तरह के शोषण का सामना करना पड़ा भारी श्रम के बावजूद, उन्हें पुरुषों की तुलना में कम वेतन दिया जाता था। निर्माण स्थलों पर ब्रिटिश अधिकारियों, ठेकेदारों, और बाहरी मजदूरों द्वारा संताल महिलाओं के साथ यौन दुर्व्यवहार की घटनाएँ असामान्य नहीं थीं। औपनिवेशिक शासन में आदिवासी महिलाओं को अक्सर कमजोर और उपलब्ध माना जाता था, जिसके चलते उनके साथ हिंसा और शोषणकारी घटनाएँ प्रत्यक्ष रूप से हुल का कारण नहीं बनी लेकिन इस तरह की घटनायें अंग्रेजी शासन के खिलाफ अंदर ही अंदर आक्रोश पैदा करती रही।

इन सब कारणों के बीच एक मामूली घटना ने असंतोष की चिंगारी को हवा दे दी. जून 1855 के महीने में एक चोरी की घटना में कई संतालों को पुलिस द्वारा पकड़ लिया गया और उनकी जम कर पिटाई की गई। गुस्साए संतालों के भीड़ ने उस पुलिस इंस्पेक्टर को मार दिया और यही से हुल की शुरुआत हो गई।

30 जून 1855 को सिदो कान्हू भाइयों के नेतृत्व में करीब 6000 संताल भोगनाडीह में एकत्र हुए. सिद्धो ने उन्हें बताया की उनके देवता सिंहबोंगा उनके स्वप्न में आये थे और उन्हें दामिन ए कोह में अबुआ राज की स्थापना के लिए आदेश दिया है। इस अबुआ राज की स्थापना के लिए संतालों ने विद्रोह कर दिया और ब्रिटिश प्रशासन और पुलिस के अलावा महाजनों और साहूकारों को लूटना और उनकी हत्या करनी शुरू कर दी। देखते देखते यह विद्रोह दामिन-ए-कोह से निकल कर धनबाद, भागलपुर, सिंहभूम और वीरभूम तक पहुँच गया और विद्रोहियों के संख्या 6000 से 60000 तक पहुँच गई। अंग्रेजों ने इस विद्रोह को कुचलने के लिये मार्शल लॉ लगा दिया और फौज की सहायता से इस विद्रोह को कुचल दिया। सिदो कान्हू के अलावा करीब 15000 लोग शहीद हुए, और हजारों को गिरफ्तार कर लिया गया। 1855-56 का सवाल हुल आधुनिक भारत के इतिहास की एक ऐसी घटना है जिसने इस क्षेत्र की राजनीतिक प्रशासनिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में एक क्रांतिकारी बदलाव लाया है। इस घटना ने ना सिर्फ ईस्ट इंडिया कम्पनी को प्रभावित किया बल्कि आने वाले समय में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आदोलन और स्वतंत्र भारत के बाद

की राजनीति को भी प्रभावित किया। आज भी संताल हुल वर्तमान झारखंड राज्य की राजनीतिक, प्रशासनिक कानूनी और आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित कर रहा है।

हुल के परिणाम :-

संताल परगना का अभ्युदयः-

1855 के अधिनियम XXXVII ने संताल परगना को जन्म दिया यह क्षेत्र 5470 वर्ग माइल का था जिसमें भागलपुर और बीरभूम जिले के हिस्से थे। दुमका को इसके प्रशासन का केंद्र बनाया गया। संताल परगना को नान रेग्युलेशन जिले का दर्जा दिया गया और यहाँ देश के प्रचलित सामान्य कानून थे जिन्हें संताल पसंद नहीं करते थे उससे उनको मुक्त रखा गया और संताल संस्कृति को देखते हुए एक नई व्यवस्था लागू की गई। पूरे संताल परगना जिले को चार सब डिविजन में बाँटा गया जिसका प्रभार अलग अलग डिप्टी कमीशनर को दिया गया। इन डिप्टी कमिश्नर की सहायता के लिए चार असिस्टेंट कमिनशर नियुक्त किए गए, 1856 के पुलिस अधिनियम में संशोधन कर गाँव के परम्परागत प्रधान को पुलिस की जिम्मेदारी सौंपी गई। 1872 में संताल परगना को स्थायी रूप से नानरेग्युलेशन जिले के रूप में मान्यता मिली। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसे संताल हुल के परिणाम के रूप में देखा गया।

संताल परगना कास्तकारी अधिनियम 1876 :-

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन जो हुल का परिणाम था वह संताल परगना काशतकारी अधिनियम 1876 का लागू होना था। अंग्रेजों ने 1876 में संताल परगना काश्तकारी अधिनियम पारित किया, जिसने आदिवासियों को शोषण के खिलाफ कुछ सुरक्षा प्रदान की। संथाल परगना काश्तकारी अधिनियम, 1876 बंगाल के साथ झारखंड की सीमा के साथ संताल परगना क्षेत्र में गैर-आदिवासियों को आदिवासी भूमि की बिक्री पर रोक लगाता है। स्वतंत्रता के बाद संताल परगना काश्तकारी अधिनियम, 1949 झारखंड के संथाल परगना संभाग में काश्तकारी का पहला संहिताबद्ध कानून बना और इसके अधिनियमित होने पर, इसने मौजूदा ब्रिटिश-युग के किरायेदारी कानूनों को पूरक बनाया और भूमि से संबंधित कुछ प्रथागत कानूनों को संहिताबद्ध किया गया।

बंधुआ मजदूरी की समाप्ति-

तीसरी सबसे महत्वपूर्ण परिणाम हुल का यह था कि बंधुआ मजदूरी की प्रथा को 1860 में डिप्टी कमिश्नर विलियम रबिंसन द्वारा समाप्त कर दिया गया। यह प्रथा संतालों को मामूली रकम के लिए महाजनों और जमींदारों का पीढ़ी दर पीढ़ी गुलाम बना देती थी। नापतौल के बटखहरे में भी सुधार कर संतालों को ठगी से बचाने के उपाय किए गए।

संताल हुल से संतालों को कोई आर्थिक लाभ नहीं हुआ जिसके लिए वे लड़ रहे थे, इसके विपरीत उनकी आर्थिक हालात और बिगड़ गये तथा गरीबी और भुखमरी के जाल में फंस गए। अंग्रेजों ने काफी क्रूरता

से संताल हुल को कुचला था, उन्होंने गाँव के गाँव जला दिए थे और फसलों में आग लगा दी थी। संताल गाँव छोड़ कर जाने लगे और उनके मवेशी और अन्य सम्पत्ति पर दूसरों ने अधिकार जमा लिया। 1865-66 में आए आकाल ने इनकी स्थित्ति और गम्भीर कर दी। कंद मूल और कच्चे महुआ से वे अपना पेट भरते रहे। इस दरम्यान कोलेरा से हजारों संतालों की जान चली गई। एक बार फिर संताल महाजनो से कर्ज लेना शुरू कर दिये। कई सारे संताल वापस छोटनागपुर चले गये और कुछ गंगापार कर पूर्णिया जिले में चले गए, संतालों की एक खास प्रवृति उनका अपने जमीन से लगाव है और वे कुली या मजदूर के रूप में काम करना पसंद नहीं करते, लेकिन हुल से उत्पन्न हुई स्थिति ने उन्हें कुली के रूप में काम करने पर मजबूर कर दिया, गरीबी, भुखमरी और कर्ज के बोझ ने उन्हें खदानो और चाय बागानों में कार्य करने पर मजबूर कर दिया, एक आंकड़े के मुताबिक 1880 में 44.7% असम के चाय बगानो के मजदूर संताल परगना से थे। ये सारे तथ्य हुल के बाद संतालों के आर्थिक स्थिति को उजागर करते हैं। हुल विद्रोह के दमन के बाद संताल परगना में ब्रिटिश प्रशासन ने क्षेत्र को विशेष प्रशासनिक इकाई के रूप में संगठित किया और संताल परगना टेनेसी एक्ट (SPT Act) जैसे कानून लागू किए। इस दौरान संताल समुदाय आर्थिक शोषण, भूमि हड़पने और सामाजिक उत्पीड़न से जूझ रहा था। इन परिस्थितियों ने मिशनरियों के लिए एक अवसर प्रदान किया, क्योंकि वे शिक्षा, स्वास्थ्य, सेवाएँ और सामाजिक सुधार के नाम पर संतालों के बीच अपनी पैठ बनाने में सक्षम हुए।

ईसाई मिशनरी, विशेष रूप से प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक समूह जैसे मिशन और एप्लिकन चर्च, ने 19वीं सदी के उत्तरार्थ में संताल परगना में अपने कार्य शुरू किए। वे संतालों की गरीबी, अशिक्षा और सामाजिक पिछड़ेपन का लाभ उठाकर उन्हें ईसाई धर्म की ओर आकर्षित करने का प्रयास करने लगे।

हुल के बाद संतालों में ब्रिटिश शासन और स्थानीय जमींदारों के प्रति असंतोष था। मिशनरियों ने इसे अवसर के रूप में देखा और संतालों को यह संदेश दिया कि ईसाई धर्म अपनाने से उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार होगा। कई संताल परिवारों ने प्रलोभन (जैसे भोजन, कपड़े, और आर्थिक सहायता) या दबाव में ईसाई धर्म स्वीकार किया। हालांकि, धर्मांतरण की संख्या शुरू में सीमित थी, लेकिन 20वीं सदी तक यह धीर-धीरे बढ़ने लगी।

मिशनरियों के प्रभाव ने संतालों की पारंपरिक संस्कृति और प्रकृति-पूजा (जैसे मारांग बुरु और जाहेर एरा) पर असर डाला। ईसाई धर्म के प्रचार ने संतालों के बीच एक सांस्कृतिक टकराव को जन्म दिया। कुछ संतालों ने मिशनरियों का विरोध किया और अपनी पहचान को बनाए रखने के लिए "सरना धर्म" को मजबूत करने की कोशिश की। यह प्रतिरोध आज भी संताल परगना में देखा जा सकता है, जहाँ सरन आदोलन सक्रिय है।

ब्रिटिश शासन ने मिशनरियों को अप्रत्यक्ष समर्थन दिया, क्योंकि वे संतालों को "सभ्य" बनाने और विद्रोही भावनाओं को शांत करने में सहायक माने जाते थे। मिशनरियों ने संताल परगना में अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई नैतिकता को बढ़ावा देकर औपनिवेशिक एजेंडे को मजबूत किया।

हुल की असफलता ने संतालों को अपने समस्याओं के समाधान के लिए नयी रणनीति को अपनाने के लिए प्रेरित किया, अब वो सशत्र विद्रोह के स्थान पर संवैधानिक तरीके से अपनी बात रखने का रास्ता अख्तियार करने लगे, 1861 हांडवे में बढ़े हुए लगान विरोधी आंदोलन में सुंदर माँझी के नेतृत्व में संतालों ने पहले अपना पेटिशन असिस्टेंट कमिश्नर को दिया और बाद में बंगाल के लेफिटिनेंट गवर्नर से मुलाकात कर बढ़े हुए लगान का मामला सुलझा लिया, भगीरथ मांझी के नेतृत्व में खैरवार आंदोलन वैधानिक तरीका अपनाते हुए अपने माँगों को रखता रहा। 1881 में लगभग 50000 संताल सफाहोड़ हो गए थे जो आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का हिस्सा बने।

संताल हुल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि संतालों की पहचान और अपने संस्कृति से जुड़ कर रहने की उनकी प्रवृति को बल देने वाली बनी। जल, जंगल और जमीन से उनका लगाव पूरी दुनिया को पता चला और उनमें सामूहिक चेतना का मजबूती से विकास हुआ। अबुआ राज का उनका सपना आजादी के बाद झारखंड राज्य के निर्माण के रूप में सामने आया और शोषण से मुक्ति के लिए उनके आगे का मार्ग प्रशस्त हुआ। संताल हुल संताल पहचान की राजनीति का मूल आधार है। यह विद्रोह न केवल उनके ऐतिहासिक संघर्ष को दर्शाता है, बल्कि आधुनिक काल में उनकी सास्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक पहचान को आकार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हुल की विरासत संतालों को यह याद दिलाती है कि उनकी पहचान केवल पीड़ित होने की नहीं, बल्कि प्रतिरोध और आत्मनिर्णय की है। आज भी संताल परगना और झारखंड में हुल का प्रभाव उनकी राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

संदर्भ :-

1. आर्चर, विलियम जॉर्ज. (1974). *द हिल ऑफ फ्लूट्स: लाइफ, लव एंड पोएट्री इन ट्राइबल इंडिया*. यूनिवर्सिटी ऑफ पिट्सबर्ग प्रेस.

2. हंटर, विलियम विल्सन. (1868). द *एनल्स ऑफ रूरल बंगाल*. लेयपोल्ट एंड होल्ट.

3. बोडिंग, पॉल ओलाफ. (1925). *स्टडीज इन संताल मेडिसिन एंड कनेक्टेड फोक्लोर*. एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल. (1925-1940)

4. झा, जगदीश चंद्र. (1987). द *ट्राइबल रिबेलियन ऑफ 1855*. के. पी. बागची एंड कंपनी.

5. बोडिंग, पॉल ओलाफ. (2016). *ट्रेडिशन एंड इंस्टिट्यूशन्स ऑफ संथाल*. ज्ञान पब्लिशिंग हाउस.

6. सोरेन, धूनी. (2019). *हिस्ट्री ऑफ संथाल्स: ए ब्रीफ अकाउंट*. ड्रीम पब्लिकेशंस.

7. किस्कु, डी. बारका. (2017). द *संथाल्स एंड देयर एंसेस्टर्स. संथाली लिटरेरी एंड कल्चरल सोसाइटी*.

8. मुखर्जी, चारूलाल. (2017). द *संथाल्स*. ज्ञान पब्लिशिंग हाउस.

9. सोरेन, ई. जे. (2020). *ग्राम प्रधान का अधिकार एवं कर्त्तव्य*. धर्म प्रिंटिंग प्रेस.

10. चेतन, अच्युत एवं सिन्हा, अजय. (2022). *फ्रॉम रेसिस्टेंस टू रिवोल्यूशन: द हूल एंड इट्स लिगेसी*. श्री पब्लिशिंग एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स.

11. मजूमदार, नबेंदु दत्ता. (1956). द *संथाल: ए स्टडी इन कल्चर-चेंज*. जनरल एंथ्रोपोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया.

12. आर्चर, विलियम जॉर्ज. (2013). *ट्राइबल लॉ एंड जस्टिस*. ईशा बुक्स.

13. चौधुरी, अभय बुद्धेश्वर. (2013). *स्टेट फॉर्मेशन अमंग ट्राइबल्स: ए क्वेस्ट फॉर संथाल आइडेंटिटी*. ज्ञान पब्लिशिंग हाउस.

14. रायक्रॉफ्ट, डैनियल जेम्स एवं दासगुप्ता, संगीता. (2011). द *पॉलिटिक्स ऑफ बिलॉन्गिंग इन इंडिया: बिकमिंग आदिवासी*. रूटलेज.

15. मरीन, कैरिन. (प्रकाशन वर्ष अनुपलब्ध). *हेराल्ड टैम्ब्स एंड लीचे*. प्रकाशक अनुपलब्ध.

16. अय्यर, के. गोपाल. (2020). *ट्राइबल लैंड, फॉरेस्ट एंड आइडेंटिटी इश्यूज: ए स्टडी ऑफ झारखंड एंड ओडिशा*. कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड.

मूल्यांकन की बदलती संस्कृति का आकलन : एन. ई. पी. 2020 के संदर्भ में

बाल मुकुन्द पाल*

phdbmp@gmail.com

प्रो. (डॉ.) शिरीष पाल सिंह†

shireesh.singh@ciet.nic.in

सारांश

शिक्षा में मूल्यांकन की विधियों का उद्देश्य यह पहचानना है कि छात्र शैक्षणिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सही ढंग से आगे बढ़ रहे हैं अथवा नहीं। इसीलिए मूल्यांकन विधियों के कार्यान्वयन के माध्यम से छात्रों की अधिगम की क्षमताओं और शैक्षणिक प्रदर्शन की पहचान और मूल्यांकन किया जाता है। जब शिक्षक मूल्यांकन विधियों को अभ्यास में लाते हैं, तो वे आम तौर पर छात्रों को ध्यान में रखकर खुद को अच्छे से तैयार करते हैं। छात्रों के अच्छा प्रदर्शन से वे अपनी भूमिका का सही मूल्यांकन कर पाते हैं। इसलिए शिक्षकों और छात्रों के लिए शिक्षा के सभी स्तरों पर नियमित आधार पर सतत मूल्यांकन को लागू करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। शैक्षणिक संस्थानों के सभी स्तरों पर छात्रों को आश्वस्त होने के लिए योगात्मक से रचनात्मक की आवश्यकता है। उन्हें किसी भी तरह असुरक्षा महसूस नहीं करना चाहिए। खासकर तब, जब विभिन्न प्रकार की मूल्यांकन विधियों को व्यवहार में लाया जाता है। इसी को ध्यान में रखते हुए भारत में 2020 में जो शिक्षा नीति बनी है, उसमें मूल्यांकन के नए आयाम को विकसित करने का प्रयास किया गया है। जिसे इस शोध पत्र में ध्यान में रखा गया है। जिसके तहत प्रमुख उद्देश्य के रूप में 2020 की शिक्षा नीति के संदर्भ में मूल्यांकन का अर्थ और महत्व, मूल्यांकन के सिद्धांत, मूल्यांकन की विधियों के प्रकार, मूल्यांकन विधियों में सुधार लाने के उपाय और मूल्यांकन को लागू करने के नवीन तरीके आकलन को रखा गया है तथा यहाँ द्वितीय आंकड़ों का प्रयोग किया गया है।

प्रमुख बिंदु:

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शैक्षणिक प्रदर्शन, मूल्यांकन की विधियां, अधिगम की क्षमता, सिद्धांत, शिक्षक और छात्र

परिचय:

शिक्षा समाज में व्यक्ति की क्षमताओं को अभिव्यक्त करती है। इसी के मद्देनजर नई शिक्षा नीति 30 जुलाई 2020 को भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा जारी की गई। इसमें इस नीति के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

† **प्रोफेसर, सी. आई. ई. टी., राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली- 110016**

उद्देश्य पर जोर देते हुए कहा गया है -"यह शिक्षा नीति गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सार्वभौमिक पहुँच प्रदान करना, वैश्विक मंच पर सामाजिक न्याय और समानता, वैज्ञानिक उन्नति , राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण में भारत की सतत प्रगति और सम्यक विकास की कुंजी है" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृ.2)।* विद्वानों का मानना है कि यह भारत की पहली ऐसी शिक्षा नीति है जिससे शिक्षा को विशेषीकृत तरीके से विकसित करने पर जोर दिया गया है। जिसमें मूल्यांकन के विविध तरीके पर बदलाव लाए गए हैं। यह नीति समग्र रूप से यह बतलाती है कि मूल्यांकन से शिक्षक यह निर्धारित करने में सक्षम होते हैं कि क्या वे अपने कर्तव्यों को उचित तरीके से निभा रहे हैं या उसमें सुधार लाने की आवश्यकता है। जिसके परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय शिक्षा के स्तर को ऊंचा करने की बात की गई है। इसीलिए इस शिक्षा नीति के अनुसार "2030 तक सभी के लिए समावेशी और समान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को सुनिश्चित करने और जीवन पर्यंत शिक्षा के अवसरों को बढ़ाए जाने के लक्ष्य तक पहुँच पा रहे है" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृ.3)।* अगर देखा जाए तो यह समय के परिप्रेक्ष्य में भारत में भविष्य में दस वर्षों के शिक्षा मूल्यांकन की विधियां पहल की उपयुक्तता, प्रभावशीलता, समानता और दक्षता के संदर्भ में जानकारी का समग्र मूल्यांकन का प्रावधान करती है। यही कारण है कि आधुनिक मूल्यांकन विधियों को शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षकों और प्रशिक्षकों द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। इस प्रक्रिया में उनका प्राथमिक से लेकर उच्च संस्थानों का उद्देश्य यह पता लगाना होता है कि छात्रों ने कितना सीखा है, कैसे सीखा है, क्या सीखा है और उनमें क्या सुधार लाने की आवश्यकता है।

नए भारत के शिक्षकों का कर्तव्य के साथ उनका दायित्व नींव का निर्माण करना होता है कि वे मूल्यांकन विधियों के लिए रचनात्मक योजना का निर्माण करें। इससे शैक्षिक संसाधनों को गति के साथ नई दिशा प्राप्त होती है। इसी संदर्भ में शिक्षकों और प्रशिक्षकों को उन संसाधनों, दृष्टिकोणों और विधियों की अनेक योजना बनाने की आवश्यकता होती है जो मूल्यांकन विधियों को उचित तरीके से संचालित करने के लिए आवश्यक है। मूल्यांकन विधियों की रूपरेखा विभिन्न कारकों, यानी छात्रों के ग्रेड स्तर से मूल्यांकन, शैक्षणिक विषयों के साथ अवधारणाओं और शैक्षणिक लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के अनुसार प्रणाली बनाई जाती है। जब उन्हें डिज़ाइन किया जाता है, तो उन्हें यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होती है कि वे प्रशिक्षकों के लिए यह पता लगाने में सहायक हों कि क्या छात्रों ने अवधारणाओं को अच्छी तरह से समझ लिया है या उन्हें असफलताओं का सामना करना पड़ रहा है। शिक्षकों और प्रशिक्षकों को छात्रों का मूल्यांकन करते समय निष्पक्ष होने की आवश्यकता होती है। यह निष्पक्षता विद्यार्थियों के जीवन में ज्ञान और प्रेम के प्रति विश्वास पैदा करती है। इस प्रेम और विश्वास की निर्मिति बनाए रखना प्राचीन शिक्षा नीति की मौलिक जिम्मेदारी थी। इसीलिए इस शिक्षा नीति में कहा गया है कि "प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और नवाचार की समृद्ध परंपरा के दृष्टि से यह शिक्षा नीति तैयार की गयी है। जिसमें ज्ञान, प्रज्ञा, अनुराग और सत्य की खोज को तार्किक भारतीय संस्कृति परंपरा और शिक्षा में सदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य को प्राप्त करना माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन का मूल्य अथवा स्कूल के बाद के जीवन की तैयारी के रूप में धन अर्जन करना नहीं बल्कि पूर्ण आत्म-ज्ञान और मुक्ति के रूप में मार्ग माना गया था" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.4)।* इस तरह

की शिक्षा नीति ही सभी तरह के भेदभाव से परे लोगों को जीवन जीने की दृष्टि देती है। शिक्षकों को भी यह तय करना होता है कि जाति, वर्ग, पंथ, नस्ल, धर्म, भारतीयता, व्यक्तित्व लक्षण, आयु, लिंग और अन्य सामाजिक कारकों के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव न करें। आर्थिक पृष्ठभूमि, कक्षा असाइनमेंट, गृहकार्य, परीक्षण, परीक्षा प्रतियोगिताओं, सामाजिक कौशल के साथ अन्य गतिविधियों में छात्रों का प्रदर्शन ही उनके मूल्यांकन में महत्वपूर्ण होता है। जबकि, छात्रों के प्रभावी विकास और प्रगति और उनके शिक्षा की समग्र प्रणाली को समृद्ध करने के लिए, मूल्यांकन विधियों को निष्पक्ष और उचित तरीके से व्यवहार में लाने की आवश्यकता होती है। इसीलिए कहते हैं कि "मूल्यांकन प्रदर्शन सुधार और जवाबदेही ढांचे में उल्लिखित निरंतर सुधार के चक्र का एक हिस्सा बन चुकी है। कठोर मूल्यांकन पहल के कार्यान्वयन के दौरान निरंतर आधार पर फीडबैक प्रदान करता है" *(मूल्यांकन रणनीति, 2016)।*

2020 के शिक्षा नीति से पूर्व के शैक्षिक मूल्यांकन नीति का इतिहास:

1- स्वतंत्रता से पूर्व शैक्षिक मूल्यांकन नीति: स्वतंत्रता पूर्व समय में शैक्षिक मूल्यांकन की प्रणाली अत्यंत ही सरल रहती थी लेकिन यह उपयोगिता से ज्यादा आदर्शवादी थी। वैदिक काल में जब शिक्षा गुरुकुल प्रणाली के तहत दी जाती थी और बौद्ध काल में शिक्षा संघ व विहारों में दी जाती थी तो मूल्यांकन मौखिक रूप में, स्वर पाठ और अनौपचारिक अवलोकन के द्वारा किया जाता था, फिर बाद में मुगल काल में शिक्षा मकतबों और मदरसों में दी जाने लगी। तब भी शिक्षा का मूल्यांकन मौखिक रूप से, स्वर पाठ और अवलोकन के द्वारा किया जाता था, उसके बाद भारत में अंग्रेजी काल की शिक्षा का प्रारंभ हुआ। फलस्वरूप वुड्स डिस्पैच (1835) ने आधुनिक शिक्षा की प्रणाली की नींव भारत में डाली, जिसका मैट्रिक स्तर पर पहली परीक्षा (1857) हुई। फिर विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा प्रचलन में आया, जो सैडलर आयोग (1917-19) के तहत लागू हुआ। माध्यमिक और इंटरमीडिएट बोर्ड की परीक्षा हार्टोग समिति (1929) के माध्यम से सार्वजनिक रूप से होने लगी जो सबके लिए शुरू की गई थी।

2. स्वतंत्रता के बाद शैक्षिक मूल्यांकन नीति: आजाद भारत की शिक्षा कहें तो 1947 में जब देश आजाद हुआ। उसके बाद देश में शैक्षिक पद्धति का मूल्यांकन करने के लिए शैक्षिक नीतियों का उल्लेख किया गया। जिसके तहत 1968 में परीक्षा सुधारों के कार्यक्रम का एक प्रमुख लक्ष्य परीक्षाओं की विश्वसनीयता और वैधता में सुधार करना रखा गया। जिसके तहत 'मूल्यांकन को एक सतत प्रक्रिया बनाने की बात कही गई, जिसका उद्देश्य किसी दिए गए प्रदर्शन की गुणवत्ता को 'प्रमाणित' करने के बजाय छात्र की उपलब्धि के स्तर को सुधारने में मदद करना था। ताकि वे अपने सामाजिक मूल्यों को समझते हुए संतुलन के साथ जीवन यापन कर सके। इसी को ध्यान में रखते हुए इस शिक्षा नीति में भी कहा गया है- "भारत के युवाओं को भारत के दृष्टि के बारे में और इसकी शाश्वत सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी आवश्यकताओं, भाषा और ज्ञान परंपराओं के बारे में ज्ञानवान बनाना राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, परस्पर सहयोग और एकता एवं भारत के सतत ऊंचाइयों की ओर बढ़ने की दृष्टि से यह अति आवश्यक है" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ. 5)*। प्रथम शिक्षा

नीति 1968 के बाद राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 बनी। इस नीति में व्यक्तिपरकता के अधिकांश तत्वों को समाप्त करने का सुझाव के साथ ही स्मृतिपरकता पर जोर दिया गया था। ताकि विषय को याद करते हुए बोधगम्य बनाया जा सके। इसके लिए सतत एवं व्यापक मूल्यांकन का सुझाव दिया गया था। जिससे मूल्यांकन ग्रेडिंग प्रणाली और माध्यमिक स्तर से सेमेस्टर प्रणाली को अभिन्न अंग बना दिया गया। इससे बच्चों में परीक्षा का बोझ कम हो गया जो किसी न किसी रूप में आज भी प्रचलित है।

2020 के शिक्षा नीति में शैक्षिक मूल्यांकन की पद्धतियाँ: भारतीय शिक्षा नीति (NEP) 2020, अधिगम के साथ-साथ विकास को समयानुकूल करने के लिए मूल्यांकन की पद्धति बदलने पर जोर देती है । "यह सीखने के सतत मूल्यांकन पर विश्वास करती है। शिक्षा के अंत में होने वाली परीक्षा के बजाय निरंतर एवं सतत मूल्यांकन की संस्कृति को अपनाती है" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पृ. 57)।* ताकि शिक्षा नियमित, रचनात्मक और योग्यता आधारित बने। छात्रों के अधिगम और विकास को बढ़ावा मिले सके। इसी परिप्रेक्ष्य में उच्च स्तरीय कौशल का परीक्षण विश्लेषण और आलोचनात्मक परीक्षण की भी बात की गई है। जिसके तहत अधिगम को अनुकूलित करने के लिए शिक्षण की प्रक्रियाओं को लगातार संशोधित करने में संपूर्ण एवं समग्र स्कूली शिक्षा प्रणाली की सहायता करना आवश्यक है। जिसके बारे में इस शिक्षा नीति में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "हर बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं को स्वीकृति मिले, पहचान और उनके संतुलित विकास हेतु प्रयास करना तथा शिक्षकों और अभिभावकों को इन क्षमताओं के प्रति संवेदनशील बनाना जिससे वे उस बच्चे की अकादमिक और अन्य क्षमताओं में उसके सर्वांगीण विकास पर भी पूरा ध्यान दें" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ. 8)।* इसके लिए समग्र शिक्षा के विकास को प्रोत्साहित करने के लिए बोर्ड परीक्षाओं को फिर से डिज़ाइन किया जाएगा। खास करके 10वीं और 12वीं कक्षा को इसमें विशेष रूप से सम्मिलित किया जाएगा। इनके बोर्ड परीक्षा को और 'आसान' बनाए जाने का उपबंध के प्रारूप का भी प्रबंध करना है। इन परीक्षाओं में पाठ्य सामग्री को याद रखने के लिए हतोत्साहित किया गया और मुख्य क्षमताओं के परीक्षण पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की बात की गई है। जिसके तहत प्रश्न पत्र दो भागों में हो सकता है। पहला वस्तुनिष्ठ और दूसरा वर्णनात्मक होगा। कला और विज्ञान धाराओं के बीच कोई कठोर पृथक्करण नहीं किया जायेगा। पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय एससीईआरटी/एनसीईआरटी, बीओएएस, एनएसी/परख के साथ परामर्श करना महत्वपूर्ण होगा।

भारतीय शिक्षा नीति 2020 के तहत मूल्यांकन हेतु प्रमुख निर्दिष्ट मानदंड: भारतीय शिक्षा नीति के साथ-साथ मूल्यांकन हेतु अनेक आयाम विकसित किये गए हैं। इसमें दिशा निर्देश जारी किया गया है। इन निर्देशों का संबंध अनेक शैक्षिक मूल्यांकन से है। जिसका नवीन रूप निर्माणात्मक मूल्यांकन परख आदि हो सकता है।

1- पूर्व-मूल्यांकन या नैदानिक मूल्यांकन: इस मानदंड के तहत प्रशिक्षकों द्वारा मूल्यांकन विधियों को अभ्यास में लाने से पहले, उन्हें छात्रों की शैक्षणिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा। इस बात की शिक्षा नीति 2020 में भी तसदीक की गई है। कहा गया है कि "ईसीसीई पाठ्यक्रम और शिक्षक-शिक्षण की

जिम्मेदारी मानव संसाधन मंत्रालय की होगी। इसे प्राथमिक विद्यालयों के माध्यम से माध्यमिक विद्यालयों तक इसकी निरन्तरता सुनिश्चित की जा सके और शिक्षा के मूलभूत पहलुओं पर ध्यान रखा जा सके"*(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.10)।* छात्रों की शैक्षणिक आवश्यकताएं इस बात पर निर्भर करती हैं कि वे क्या सीखने के इच्छुक हैं तथा क्या उन्हें अपने कार्यों और गतिविधियों को पूरा करने और परियोजनाओं और असाइनमेंट की तैयारी हेतु समर्थन और सहायता की आवश्यकता है? यदि ऐसा है तो उसका स्वरूप क्या है? प्रशिक्षकों को शक्तियों और कमजोरियों के संदर्भ में जागरूक होने की आवश्यकता भी है। इसलिए यह मानदंड शिक्षण और अधिगम के तरीकों और निर्देशात्मक रणनीतियों के कार्यान्वयन में कुछ ऐसे मार्ग सुनिश्चित करते हैं कि विद्यार्थियों की ताकत मजबूत हो और कमजोरियां खत्म हो जाएं। इसके लिए शिक्षा नीति में भी कार्यक्रम बनाने की बात कही गई है । "पाठ्यक्रम की पाठ्यवस्तु को प्रत्येक विषय में कम करके इसे बेहद बुनियादी चीज़ों पर केंद्रित किया जाएगा। जिससे कि समग्र अधिगम, खोज-आधारित, आचरण-आधारित और संश्लेषण आधारित अधिगम पर ज़रूरी ध्यान दिया जा सके। इसलिए यह अध्ययन वस्तु अवधारणाओं, विचारों, अनुप्रयोगों और समस्या-समाधान पर केंद्रित होगा"।*(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.18)* इसलिए, यह कह सकते हैं कि इस पूर्व-मूल्यांकन या नैदानिक मूल्यांकन के तहत विधियों और अनुदेशात्मक रणनीतियों को इस तरह से तैयार करने की आवश्यकता है कि छात्रों की शैक्षणिक आवश्यकताओं, शक्तियों और कमजोरियों का विश्लेषण किया जा सके।

2- रचनात्मक मूल्यांकन: शिक्षा में छात्रों के अधिगम की निगरानी करने और प्रतिक्रिया प्रदान करने के लिए रचनात्मक मूल्यांकन को व्यवहार में लाया जाता है। इसका उपयोग निर्देश विकसित करने के पहले प्रयास में किया जाता है। जब छात्रों को पाठ योजनाओं और शैक्षणिक अवधारणाओं के संदर्भ में स्पष्टीकरण प्रदान किया जाता है तो शिक्षक और प्रशिक्षक प्रश्न पूछते हैं, असाइनमेंट देते हैं। साथ ही साथ उन्हें पाठ योजनाओं में विविध पत्रों को निभाने के लिए भी कहते हैं। इसके माध्यम से शिक्षण रणनीतियों में अंतराल की पहचान की जाती है। इस रचनात्मक विधि के लिहाज से भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति अहम भूमिका निभा सकती है। इसने पाठ्यक्रम में भी काफी सुधार करने हेतु दृष्टि प्रदान की है। "पाठ्यक्रम में बुनियादी साक्षरता और संख्या-ज्ञान पर आधारित ध्यान दिया जाएगा और पूरे प्रारम्भिक और माध्यमिक पाठ्यक्रम के दौरान, एक मजबूत, सतत, रचनात्मक और अनुकूल मूल्यांकन के साथ सारगर्भित विषय के रूप में प्रत्येक बच्चों का सीखना अनिवार्य रहेगा। सामान्यतया पढ़ने, लिखने, गणितीय चिंतन के साथ अंकगणितीय चिंतन पर ध्यान केंद्रित रहेगा।"*(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.1012)* यह अच्छे प्रदर्शन को बढ़ावा देगा। जब छात्र अच्छा प्रदर्शन कर रहे होते हैं, तो इससे पता चलता है कि निर्देशात्मक रणनीतियों को सुव्यवस्थित तरीके से क्रियान्वित किया गया है। दूसरी ओर, जब छात्रों को असफलताओं का अनुभव होता है, तो यह इंगित करता है कि अनुसंधान करने और शिक्षण-सीखने के तरीकों, निर्देशात्मक रणनीतियों और शिक्षण-अधिगम की सामग्री में सुधार लाने की आवश्यकता है। इसलिए, यह अच्छी तरह से समझा जाता है कि रचनात्मक मूल्यांकन एक प्रकार का ऐसा

मूल्यांकन है, जो शिक्षण-अधिगम के तरीकों, निर्देशात्मक रणनीतियों और शिक्षण-सीखने की सामग्री के उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान देगा। जिसका प्रयोग शिक्षा नीति 2020 के तहत संभव बनाया जायेगा।

3- योगात्मक मूल्यांकन: यह मूल्यांकन का स्वरूप भी भारतीय शिक्षा नीति 2020 के तहत योग्य माना जाता है। योगात्मक मूल्यांकन, मूल्यांकन का ऐसा प्रकार है, जहां प्रशिक्षक यह दृष्टिकोण बनाते हैं कि निर्देश के अंत में सबसे महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हो चुके हैं। सीखने की प्रभावशीलता, निर्देश पर प्रतिक्रिया और वे छात्रों के लिए कैसे फायदेमंद साबित हुए हैं, साथ ही शिक्षा की समग्र प्रणाली को भी ध्यान में रखा जाता है। इसी को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षक और शिक्षार्थी के संबंधों को भी रेखांकित किया गया है। शिक्षा नीति में कहा गया है कि "अधिगम का प्राथमिक उद्देश्य वास्तव में सीखने के लिए होगा। यह शिक्षक और शिक्षार्थी और पूरी स्कूलीय शिक्षा प्रक्रिया में मदद करेगा, सभी शिक्षार्थियों के लिए सीखने और विकास को अनुकूलित करने के लिए, शिक्षण और सीखने की प्रक्रिया को संशोधित करने में मदद करेगा। यह शिक्षा के सभी स्तरों पर मूल्यांकन के लिए आधारभूत सिद्धांत होगा।"*(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.26)* इस क्रम में जब छात्र पाठ-योजनाओं और शैक्षणिक अवधारणाओं को अच्छी तरह से समझने और असाइनमेंट, परियोजनाओं, गतिविधियों और परीक्षणों में अच्छा प्रदर्शन करने में सक्षम होते हैं, तो वे न केवल व्यक्तिगत और व्यावसायिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे होते हैं, बल्कि समग्र रूप से समृद्धि पाने में भी कुशलतापूर्वक योगदान देते हैं। शिक्षा-व्यवस्था, इसलिए योगात्मक मूल्यांकन प्रशिक्षकों को यह देखने में सक्षम बनाने में उपयोगी है कि छात्र पेशेवर और व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने में अपने ज्ञान, कौशल और क्षमताओं का उपयोग कैसे कर रहे हैं।

4- संदर्भित-मानक मूल्यांकन: शिक्षा नीति 2020 के तहत संदर्भित मूल्यांकन के मामले में, प्रशिक्षक पूरे स्कूल के औसत ग्रेड के मुकाबले छात्रों के ग्रेड की तुलना करते हैं। इस प्रकार के मूल्यांकन के माध्यम से, प्रशिक्षक विभिन्न पहलुओं के संदर्भ में जानकारी उत्पन्न करने में सक्षम होते हैं अर्थात, छात्रों की सीखने की क्षमताओं को स्वीकार किया जाता है, प्रशिक्षक यह पता लगाने में सक्षम होते हैं कि क्या शिक्षण-अधिगम के तरीके, निर्देशात्मक रणनीतियाँ और शिक्षण-अधिगम की सामग्री उपलब्ध है। इस निर्देशात्मक नीति का एक आधार राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी छुपा हुआ है। "यह नीति इस बात की पुनः पुष्टि करती है कि सभी स्कूलों में शिक्षा की पहुँच, सहभागिता और अधिगम परंपराओं में सामंजस्य तथा श्रेणी के विविधता को दूर करना सभी शिक्षा क्षेत्रों के कार्यक्रमों का मुख्य लक्ष्य होगा" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पृ.38)।* इन उद्देश्यों के साथ- साथ इस बात पर भी ध्यान दिया जाता है कि क्या इन सभी का प्रयोग सार्थक है? इसके अलावा, इस तथ्य पर भी जोर दिया जाता है कि क्या छात्रों की प्रभावी वृद्धि और प्रगति हो रही है और शिक्षा की समग्र प्रणाली में संवर्धन लाया जा रहा है? जब परिणाम सकारात्मक होते हैं, तो तरीकों और रणनीतियों को सकारात्मक माना जाता है। दूसरी ओर, जब परिणाम नकारात्मक हों तो सुधार करने की जरूरत होती है। इसलिए, संदर्भित-मानक मूल्यांकन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि छात्रों का शैक्षणिक प्रदर्शन अच्छा और कक्षा मानकों के अनुरूप हो।

मूल्यांकन पद्धतियों में सुधार लाने के उपाय: भारतीय शिक्षा नीति 2020 के तहत मूल्यांकन की नीति में सुधार करने की बात की गई है। यह शिक्षा नीति मानती है कि जिस तरह से भारत की स्थिति बदल रही है, उस तरह से शिक्षा के भी नए-नए आयाम विकसित हो रहे हैं। इसी के परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक मूल्यांकन की पद्धतियों को भी बदलने की आवश्यकता है। उसके बदलाव के लिए शिक्षा नीति ने अनेक निर्देशों को प्रदान किया है। जिसे सुधार के रूप में उपाय माना जाता है। यह उपाय कई रूप में देखें जा सकते हैं।

1- उपयुक्त विवरणों के प्रारूपों का चयन करना: मूल्यांकन विधियों के कार्यान्वयन में, प्रशिक्षकों को उचित विवरणों के प्रारूपों के संदर्भ में अच्छी तरह से जागरूक होने की आवश्यकता है। जिसके तहत विभिन्न कारकों को ध्यान में रखना होगा, जैसे लेखक का नाम, रिपोर्ट तैयार करने की तारीख, परिचय, निकाय, निष्कर्ष और सिफारिशें और मुख्य बिंदुओं का सारांश। इसे रिपोर्ट और परियोजनाओं की तैयारी में एक उपयुक्त प्रक्रिया माना जाता है और यह उपयुक्त तरीके से मूल्यांकन प्रक्रियाओं को सुविधाजनक बनाता है। इससे प्राथमिक और पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को बल मिलता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि "भारत के हर कोने में उच्चतर गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से भावनात्मक, वैशेषिक शिक्षा, खास क्षेत्रों और वंचित क्षेत्रों में भी जवाहर नवोदय विद्यालय व केंद्रीय विद्यालय खोले जाएंगे। कम से कम एक वर्ष की प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा को समाहित करते हुए केंद्रीय विद्यालयों में व अन्य प्राथमिक विद्यालयों में प्री-स्कूलिंग को जोड़ा जाए *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.41)।* इसका मूल्यांकन भी आवश्यक है। इसलिए, जब छात्रों को उनके प्रशिक्षकों द्वारा उचित रिपोर्टिंग प्रारूप तैयार करने के संदर्भ में सूचित किया जाता है, तो मूल्यांकन विधियों को सुव्यवस्थित और संतोषजनक तरीके से व्यवहार में लाया जाएगा। इसलिए, यह अच्छी तरह से समझा जाता है कि उपयुक्त विवरण प्रारूपों का चयन मूल्यांकन विधियों में सुधार लाने के महत्वपूर्ण उपायों में से एक माना जाता है।

2- बाधाओं को पहचानें और कम करें: बाधाओं को व्यक्तियों के पेशेवर और व्यक्तिगत जीवन का एक अभिन्न अंग माना जाता है। शिक्षण-अधिगम विधियों, मूल्यांकन विधियों और शैक्षणिक लक्ष्यों की प्राप्ति के कार्यान्वयन के दौरान, बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। बाधाओं को पहचानने और उन्हें दूर करने या कम करने के लिए उपाय और दृष्टिकोण लागू करने की आवश्यकता है। यह विशिष्ट बालकों के लिए महत्वपूर्ण होती है। "अधिकांश कक्षाओं में ऐसे बच्चे होते हैं जिनमें सीखने की दृष्टि से कुछ विशिष्ट क्षमता होती है। इन्हें हर समय मदद की आवश्यकता होती है। निःसंकोच ऐसे मामलों में जितनी जल्दी मदद शुरू की जाती है आगे प्रगति की संभावना उतनी ही बेहतर नज़र आती है। शिक्षकों को सीखने से संबंधित इस प्रकार की अक्षमताओं की पहचान करने और उनके शिक्षा के लिए योजना बनाने में हर संभव रूप से मदद शामिल होनी चाहिए" *(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पृ.42)।* विशिष्ट बालकों में कुछ मानसिक रूप से कमजोर बच्चे भी आते हैं। उनकी समस्या को बड़ा रूप धारण करने से रोका जाए। सभी स्तरों पर शैक्षणिक संस्थानों के भीतर, जागरूकता पैदा करने के साथ-साथ बाधाओं को दूर करने के लिए उचित उपायों और प्रथाओं को व्यवहार में लाने की आवश्यकता है। इसलिए, कोई यह अच्छी तरह से समझने में सक्षम है कि जब प्रशिक्षक और पर्यवेक्षक मुख्य रूप से मूल्यांकन

विधियों के मामले में बाधाओं को पहचानने और कम करने के उपायों और दृष्टिकोणों के बारे में अच्छी तरह से जागरूक होंगे, तो वे उनमें सुधार लाने में सक्षम होंगे। .

3- समय प्रबंधन कौशल लागू करें: समय प्रबंधन कौशल वे कौशल हैं, जो व्यक्तियों को अपने समय का प्रभावी ढंग से उपयोग करने में सक्षम बनाते हैं। दूसरे शब्दों में, वे सभी कार्यों और गतिविधियों के लिए समय निकालने में सक्षम हैं। जब इन कौशलों को प्रभावी तरीके से व्यवहार में लाया जाता है, तो प्रशिक्षक पाठ योजनाओं को पूरा करने, कक्षा असाइनमेंट, होमवर्क असाइनमेंट देने, छात्रों को गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने और आवश्यक समय के भीतर परीक्षण आयोजित करने में सक्षम होते हैं। उन्हें पूर्वाग्रहों से मुक्त किया जाता है। यह विषय राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी रखा गया है। यथा- "स्कूलों के पाठ्यक्रम में सभी पूर्वाग्रह और रूढ़िवादिता को हटा दिया जाएगा और ऐसी सामग्री को अध्ययन में शामिल किया जाएगा जो सभी समुदायों के लिए प्रासंगिक और संबंधित हो"*(राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 पृ.7)।* जिसके द्वारा छात्र अपने असाइनमेंट, प्रोजेक्ट, कार्यों और गतिविधियों को समय पर पूरा करने के लिए अपनी दक्षताओं और क्षमताओं का विकास करते हैं। इन कौशलों के माध्यम से, व्यक्ति सभी कार्यों और गतिविधियों के लिए समय निकालने में सक्षम होंगे, चाहे उनके पास कितनी भी नौकरी की जिम्मेदारियाँ क्यों न हों। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि मूल्यांकन विधियों में सुधार लाने के लिए समय-प्रबंधन कौशल को लागू करना एक महत्वपूर्ण उपाय है।

निष्कर्ष: भारतीय शिक्षा नीति (एन.ई.पी. 2020) में मूल्यांकन को एक महत्वपूर्ण शैक्षिक परिवर्तन, सुधार एवं विशेषीकरण के रूप में देखा गया है। इस नीति के अंतर्गत यह संदर्भित किया गया है कि शैक्षिक शिक्षण विधियों का स्तर और मूल्यांकन सारगर्भित और सृजनात्मक पक्ष है। जो महत्वपूर्ण सोच, समग्र विकास और योग्यता-आधारित शिक्षा पर जोर देता है। जिसके तहत एन.ई.पी. 2020, एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली विकसित करना चाहता है जो परीक्षणों और मूल्यांकन की प्रकृति को बदलकर अधिक समावेशी और शिक्षार्थी-केंद्रित मानदंड का अनुसरण करना चाहती है। जिससे रटकर सीखने से हटकर समझकर सीखने और करके सीखने पर ध्यान केंद्रित करती है। जो एक व्यापक मूल्यांकन ढांचे को अपनाकर, शिक्षक और छात्रों को उनके विषयों का गहरा ज्ञान प्राप्त कराए। ताकि रचनात्मकता को प्रेरित करने और महत्वपूर्ण जीवन कौशल बनाने में मदद मिल सके। एनईपी 2020, में नए मूल्यांकन पैटर्न की तैयारी, शिक्षकों, पेपर सेटर्स और निर्देशकों की क्षमता निर्माण, विद्यालय आधारित मूल्यांकन के लिए रिपोर्ट कार्ड को फिर से डिजाइन करना, आईटी आधारित ट्रैकिंग सिस्टम का विकास, संकलनात्मक मूल्यांकन से निर्माणात्मक मूल्यांकन की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया का समावेश द्वारा परीक्षा के बोझ को कम करने की योजना शामिल है।

नए भारत की नींव के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 देखा जा रहा है जिसमें स्वच्छ, स्वस्थ, सशक्त, समृद्ध और श्रेष्ठ भारत का भविष्य होगा जिसका निर्माण ज्ञान-विज्ञान, अनुसंधान, नवाचार, संस्कार तथा मूल्य आदि के आकलन से किया जा सकता है। मूल्यांकन नई शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण आयाम है।

References

Building Better Evidence. (2016). Evaluation strategy. Department of Education and Training. Retrieved October 13, 2020, from https://qed.qld.gov.au

How to evaluate the programme. (n.d.). World Health Organization. Retrieved October 13, 2020, from https://who.int

Ministry of Education, Government of India. (2020). National Education Policy, 2020: Assessment reforms background paper for teacher's fest. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

Specify the key evaluation questions. (n.d.). Retrieved October 13, 2020, from https://betterevaluation.org

What are the types of assessment? (2020). Retrieved October 13, 2020, from https://onlineassessmenttool.com

Ministry of Education, Government of India. (n.d.). Examination and assessment reforms. Retrieved from https://www.education.gov.in/shikshakparv/docs/Examination_and_Assessment_Reforms.pdf

Udaya Public School. (n.d.). NEP assessment and examination reforms. Retrieved from https://udayapublicschool.edu.in/wp-content/uploads/2021/01/NEPASSESSMENTEXAMINATION-REFORMS.pdf

Ministry of Education, Government of India. (n.d.). Repertoire of assessment reforms. Retrieved from https://www.education.gov.in/shikshakparv/docs/Repertoire_Assessment_Reforms.pdf

IITMS. (n.d.). How NEP 2020 changes the nature of exams. Retrieved from https://www.iitms.co.in/blog/how-nep-2020-changes-the-nature-of-exams.html

Hema Kumar, G., & Joshi, V. (2021). A review on examination reforms in new education policy. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf

Wikipedia. (n.d.). National education policy 2020. Retrieved from https://s3-ap-southeast-1.amazonaws.com/ijmer/pdf/volume10/volume10-issue2(5)/33.pdf

Ministry of Education, Government of India. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf

NOTES FOR AUTHORS

SHODH KHANIJ: *Multidisciplinary Peer Reviewed Journal*

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to shodhkhanij@gmail.com or gandhikhadi@gmail.com some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. As a general rule, Shodh Khanij operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.15), an abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (include all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Shodh Khanij publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.15.

The final manuscript should be submitted in Kokila Hindi Unicode Font MS Word for Windows.

4. Language

Shodh Khanij is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी (Kokila Hindi Unicode Font Size 16). The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article; rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The bio sketch in Shodh Khanij appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition, authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proof will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.